

भूमिका

नमोगुरुभ्योगुरुपादुकाभ्यो नमः शिवेभ्यः शिवपादुकाभ्यः।
गोरक्षमत्स्येन्द्रजलन्धरेभ्योनमोनमस्तच्छिष्यपादुकाभ्यः॥

इहचेदवेदीदथसत्यमस्ति। नचेदिहावेदीन्महतीविनष्टिः॥

सजातोयेन जातेन यातिवंशः समुन्नतिम्।
परिवर्त्तिनि संसारे मृतः कोवानजायते॥

सकललोकतन्त्र प्रसिद्ध दोलक्ष्य समस्त मनुष्यों के लिए निश्चित हैं प्रथम स्वदेश जाति की उन्नति करना दूसरा परमात्मज्ञान द्वारा नित्य मोक्ष धाम को प्राप्त करना। जो इन दोनों को पूर्ण करता है वह तो मनुष्य जन्म को पूर्ण सफल बनाता है इन में एक लक्ष्य को सिद्ध करने वाले का भी जन्म अंशतः सफल ही कहाता है किन्तु जो दोनों से वञ्चित है उस का जन्म तो नहीं के ही बराबर माना जाता है। इसलिए दोनों लक्ष्यों का मार्ग दिखाने वाली इस पुस्तक का प्रकाश होना साधु और सज्जन पुरुषों के लिए नाथ जी का ही अवतार

होना माननीय है। अत जनता के लाभ के लिए इसका प्रकाशन परमावश्यक है—

यह ग्रन्थ अनेक श्रुति स्मृति तन्त्र पुराण आदिओं से सगृहीत है। इसका सग्रह किसने किया इस विषय का कोई निश्चय नहीं है। यह हस्तलिखित पुस्तक महामहोपाध्याय श्रीमान् गोपीनाथ कविराज जी एम० ए० प्रिन्सिपल कीन्स कालेज काशी के पास मे है। उन्होंने उस बृहत् सगृहीत पुस्तक से सक्षेप करके सन् १६२५ ई० मे इसका प्रकाश सरस्वती भवन द्वारा करा दिया है। इसमे प्रधान रूप से अत्याश्रमियों का निरूपण किया गया है, जो कि अवधूत योगी कहाते हैं। चतुर्थाश्रम जो सन्यास है वह साधनावस्था है, उसमे तत्त्वज्ञान के सम्पादक यम नियम प्राणायाम उपासना आदि कर्मों का अनुष्ठान करना ही मुख्य धर्म है जबकि उस साधन को पूर्ण होने से योगी सिद्ध हो जाता है तब उस अनुष्ठान की भी आवश्यकता नहीं रहती है। जैसे जब तक चावल रोटी असिद्ध रहते हैं तब तक अग्नि आदि का व्यापार करना आवश्यक रहता है। जब सिद्ध हो जाते हैं फिर उन व्यापारों की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। उसी सिद्धावस्

को प्राप्त किए हुए योगी अत्याश्रमी अवधूत कहाते हैं। अब उनकी आश्रम में गणना नहीं रहती। आश्रम से अतीत हो जाते हैं उन में सर्वकर्त्तव्यता का निषेध ही वैदिक सिद्धान्त है।

इस अवस्था के निरूपण करने का प्रकार निषेधात्मक है। जैसे सर्वातीत ब्रह्म के उपदेश का प्रकार नेति नेति निषेधरूप है। इसलिए परमार्थरूप से अन्य धर्मों का निषेध अवधूत के लिए किया जाता है न कि व्यावहारिक जनों के लिए। वास्तविक में तो साधनावस्था तक अवधूत योगियों के लिए भी संन्यास आश्रम में कहे हुये यमनियमादि धर्मों का पालन करना ही कहा गया है और यही विशेष सिद्धान्त योगियो के मत में है कि बिना सिद्धि किये साधन का त्याग नहीं करना। केवल शाब्दिक अहंब्रह्मास्मि जान कर उतने ही से तुष्ट होकर कृतकृत्य अपने को नहीं मानना। और जो लोग व्यावहारिक हैं उनके लिए श्रुतिस्मृति प्रतिपादित समस्त सनातन धर्म का आचरण करना ही कहा गया है। देवतावाद, मूर्तिपूजा, वर्णाश्रम, इत्यादि सब धर्मों का उल्लेख करके प्रमाणित किया गया है। इसमें तो इतने जोरों से प्रतिपादन किया गया है कि सनातन धर्म के प्रत्येक सिद्धान्त प्रत्यक्ष सिद्ध हैं योगी लोग इत्या-

मलक की तरह दिखा सकते हैं। और सब दर्शनों से ... सिद्धान्त सर्वोच्च है। किन्तु किसी दर्शन का खण्डन न किया गया है कि अमुक मत ठीक नहीं प्रत्युत उसको दिखाकर प्रमाणित करके उससे भी आगे बढ़कर अपने सि... की सप्रमाण उच्चता दिखाई गई है। उसको अपना अंग ... लिया है। यह चमत्कार अनुभवी दार्शनिक पुरुषों के ... पर बड़ा प्रभाव डालता है। इसीसे प्रभावित होकर सर्व... दायवलम्बी सज्जनों का हित इस ग्रन्थ से देख कर योगिराज कविराज जी ने इसको प्रकाशित कर दिया है।

इस योगाश्रम महाविद्यालय के जन्मदाता महन्त श्रीपूर्णनाथ जी महाराज हैं। आप वास्तविक में एक अद्भुत महापुरुष हैं जो पक्षपात छोड़ कर आपकी कृति का अन्यालोचन करेंगे उनका अन्तःकरण ही स्वयं इनके अद्भुत महत्व को स्वीका... किए बिना नहीं रहेगा ? आप जब से इस गद्दी पर विराजमान हुए हैं तब से यह स्थान चारों तरफ से चमक उठा। प्रधा... स्थान बोहर में है वहां अन्नचेत्र (जो कोई आवे सबको भोज... देना) यद्यपि स्थान के निर्माण समय से ही है परन्तु यहां से उसका बहुत नियत ठोस प्रबन्ध कर दिया है। जिस...

उसमें आगे किसी प्रकार से संकट आने की आशंका नहीं रही। बीकानेर पेड़ी ग्राम में गोशाला की भी वृद्धि कर दी है। बोहर और रोहतक में कितने विशाल भवन किले के समान बनवा दिए हैं। चमत्कार यह है कि इतने काम करते हुए भी आर्थिक उन्नति अर्थात् कईएक लाखों की स्थायी सम्पत्ति करदी है। आपके गुरु महन्त श्री चेतनाथ जी महाराजा बड़े धुरन्धर संस्कृत के विद्वान् थे उनकी इस सम्प्रदाय में संस्कृत विद्या की जागृति के लिए बड़ी अभिलाषा थी। और इसके लिए उद्योग भी करते थे। वर्त्तमान महन्त जो उस समय में विद्याध्ययन करते थे। इनके हृदय पर संस्कृत विद्या और धर्म के रस ने प्रगाढ़ रूप धारण कर लिया था। मैं अनुभव और परीक्षा करके सच्चे दिल से लिखता हूं कि जिस प्रकार संस्कृत विद्या का अनुराग इनमें देखा। वैसा न मैं अपने में अथवा किसी अन्य में देखता हूं। इसका परिणाम यह हुआ कि गद्दी पर बैठते ही आपने बोहर में पाठशाला खोल दी और नाथों के पढ़ने का अत्यन्त सराहनीय प्रबन्ध कर दिया। फिर पीछे विचार हुआ कि यहां विद्यालय रहने पर जनता जितना लाभ उठाती है

मलक की तरह दिखा सकते हैं। और सब दर्शनों से २स सिद्धान्त सर्वोच्च है। किन्तु किसी दर्शन का खण्डन किया गया है कि अमुक मत ठीक नहीं प्रत्युत उसको दिखाकर प्रमाणित करके उससे भी आगे बढ़कर अपने सिद्धान्त की सप्रमाण उच्चता दिखाई गई है। उसको अपना अंग बना लिया है। यह चमत्कार अनुभवी दार्शनिक पुरुषों के हृदय पर बड़ा प्रभाव डालता है। इसीसे प्रभावित होकर सर्व सम्प्रदायवलम्बी सज्जनों का हित इस ग्रन्थ से देख कर योगिराज कविराज जी ने इसको प्रकाशित कर दिया है।

इस योगाश्रम महाविद्यालय के जन्मदाता महन्त श्रीपूर्णनाथ जी महाराज हैं। आप वास्तविक में एक अद्भुत महापुरुष हैं जो पक्षपात छोड़ कर आपकी कृति का अन्वालोचन करेंगे उनका अन्तःकरण ही स्वयं इनके अद्भुत महत्व को स्वीकार किए बिना नहीं रहेगा ? आप जब से इस गद्दी पर विराजमान हुए हैं तब से यह स्थान चारों तरफ से चमक उठा। प्रधान स्थान बोहर में है वहां अन्नक्षेत्र (जो कोई आवे सबको भोजन देना) यद्यपि स्थान के निर्माण समय से ही है परन्तु पहले से उसका बहुत नियत ठोस प्रबन्ध कर दिया है। जिसमें

उसमें आगे किसी प्रकार से संकट आने की आशंका नहीं रही। बीकानेर पेडी ग्राम में गोशाला की भी वृद्धि कर दी है। बोहर और रोहतक में कितने विशाल भवन किले के समान बनवा दिए हैं। चमत्कार यह है कि इतने काम करते हुए भी आर्थिक उन्नति अर्थात् कईएक लाखों की स्थायी सम्पत्ति करदी है। आपके गुरु महन्त श्री चेतनाथ जी महाराजा बड़े धुरन्धर संस्कृत के विद्वान् थे उनकी इस सम्प्रदाय में संस्कृत विद्या की जागृति के लिए बड़ी अभिलाषा थी। और इसके लिए उद्योग भी करते थे। वर्त्तमान महन्त जो उस समय में विद्याध्ययन करते थे। इनके हृदय पर संस्कृत विद्या और धर्म के रस ने प्रगाढ़ रूप धारण कर लिया था। मैं अनुभव और परीक्षा करके सच्चे दिल से लिखता हूँ कि जिस प्रकार संस्कृत विद्या का अनुराग इनमें देखा। वैसा न मैं अपने में अथवा किसी अन्य में देखता हूं। इसका परिणाम यह हुआ कि गद्दी पर बैठते ही आपने बोहर में पाठशाला खोल दी और नाथों के पढ़ने का अत्यन्त सराहनीय प्रबन्ध कर दिया। फिर पीछे विचार हुआ कि यहां विद्यालय रहने पर जनता जितना लाभ उठाती है

इससे कहीं अधिक लाभ तीर्थक्षेत्र में रहने से उठा सकेगी। और हमारे बारहों पंथ के साथ तथा इतर साधु और गृहस्थी सब लाभ उठायेंगे इसलिए हरद्वार में यहां जमीन खरीद करके सवालाख के करीब लागत लगाकर इस विशाल भवन योगाश्रम का निर्माण करवाया। और इसकी स्थायिता के लिए एक लाख की जमींदारी (यहां से ५ माइल पर इब्राहीमपुर) खरीद कर के इसके नाम से अर्पण कर दी जो विद्यालय आज महाविद्यालय रूप में परिणत है २० वर्ष के अन्दर हजारों छात्र पढ़कर इससे निकले है और सैकड़ों शास्त्री और आचार्य होकर अनेक स्थानों में अध्यापन और धर्मप्रचार कार्य कर रहे हैं।

आश्चर्य यह है कि निज भुजबल से इस महाविद्यालय का जन्म और पालन दोनों ही अकेले कर रहे हैं न कि किसी की सहायता से हां इसके कार्य्यक्रम से संतुष्ट होकर गवर्नमेन्ट सौ रुपये मासिक सहायता देती है। साथ २ प्रधान बोहर स्थान में भी आर्थिक कोष उन्नत कर दिया है। और सम्राट् से भी सत्कार प्राप्त किया जो कि कैसरे हिन्द पद से विभूषित हैं। इसी से सज्जन पुरुष जान सकते हैं कि इस भारत माता ने ऐसे सुपुत्र एक महन्त जी को उत्पन्न करके जनता का कितना महोपकार

किया है। संस्कृत माता और उसके सेवक छात्र तथा विद्वान् लोग तो आजन्म इसके ऋणी रहेंगे। जो कि इस घोर विपत्ति में संस्कृत की इतनी बड़ी सेवा कर रहे हैं साधु समाज का भी मुख उज्ज्वलित कर दिया है नाथ सम्प्रदाय के लिए तो कहना ही क्या है। इस अमर वाणी अमृत से मूर्छित को सचेत कर दिया है यह कहना अत्युक्त नहीं होगा। इस विद्यालय में प्राचीन पुस्तक का प्रकाश करना और अन्वेषण करना यह विभाग रक्खा है जिससे साधु तथा जनता का उपकार हो। इसलिए इस पुस्तक से सर्वसाधारण लाभ उठा सके अतः इसकी हिन्दी भाषा करके प्रकाश किया जाय। और इस कुम्भ महोत्सव पर अनेक स्थानों से आए हुए सज्जन साधु महात्माओं की सेवा में उपस्थित (अर्पण) किया जाय ऐसा विचार करके अपने पास से सब व्यय भार उठा कर इसका प्रकाश महन्त जी ने करवाया। इन शुभ कर्मों के लिये महाराज जी का सहस्रशः धन्यवाद भी थोड़ा ही है परमेश्वर से प्रार्थना है कि महाराज जी की यह कीर्ति आसूर्य चन्द्रमा संसार में विद्यमान रहे। किन्तु अल्प समय करीब एक महीना में ही इस समुद्र रूप मन्थरत्न को निकालना पड़ा इसलिए पाठक महानुभावों

से प्रार्थना है कि सज्जन पुरुष हंस की तरह गुण मात्र पर ध्यान देंगे। जिनका अभ्यास है कि नित्यप्रति दूसरे के दोषों को ही चुनना उनके प्रति दोषोद्घाटन करने के लिए ही मेरी प्रार्थना है क्यों कि उनकी गालियां ही मेरे सिद्धान्त को ईश्वरवादत्व सिद्ध करेंगी। अन्त में उनका भी उपकार भार मेरे ऊपर है जिन्होंने इस कार्य में बड़ी सहायता की है इसलिए पं० श्री ज्ञानीराम शास्त्री को भी धन्यवाद देता हूं। वैद्यराज श्री श्रेयोनाथ जी को भी धन्यवाद है जिनके प्रोत्साहन से यह शुभ कार्य अल्प दिनों में सफल हुआ है। इति शिवम्।

श्री मदादिनाथपदपद्मेषु ग्रन्थकुसुमं समर्प्यते।

इति विबुध विधेयस्य झोपाह्व द्रव्येशस्य॥

श्री

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहः

मंगलम्

श्री जालन्धरनाथाय नमः ।

निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा ।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथाय ते नमः ॥ १ ॥

अलि कुला कुल गण्डक मंडलम् ।
अरुण बिन्दु सुमंडित भालकम् ॥
निखिल सिद्धिकरं गिरिजा सुतम् ।
वहु नमामि शिवाय गजाननम् ॥ १ ॥

भा० टी०—हे स्वात्मानन्द परिपूर्ण सर्वशक्तिमान् नाथ जी आपके वाम भाग में निर्गुण, और अद्भुत आपकी शक्ति दक्षिण भाग में है, अर्थात् निर्गुण और शक्ति दोनों आप में स्थित हैं। आप इन दोनों पर शासन करते हुए इनके मध्य भाग में विराजमान हैं, ऐसे आपको मैं सादर प्रणाम करता हूँ ॥१॥

मुक्ताः स्तुवन्ति पादाग्रे नखाग्रे जीव जातयः।
मुक्तामुक्तगतेर्मुक्तः सर्वत्र रमते स्थिरः ॥२॥

भा० टी०—आपके चरणों के अग्रभाग में स्थित होकर मुक्त और नखों के अग्र भाग में प्राणी समूह (अर्थात् समस्त संसार के प्राणि) आपकी स्तुति करते हैं। आप मुक्त और अमुक्त गति से स्वतन्त्र होकर कूटस्थ गति से सब जगह रमण करते हैं ॥ २ ॥

वामभागे स्थितः शम्भुः सव्ये विष्णु स्तथैव च।
मध्ये नाथः परं ज्योति स्तज्ज्योतिर्मेत्तमो हरम् ॥३॥

भा० टी०—वह नाथ स्वरूप परम ज्योति, मेरे हृदय में फैले हुए अन्धकार को नष्ट करे, जिसके वाम भाग में शम्भु, और दक्षिण भाग में विष्णु विराजमान हैं ॥ ३ ॥

अस्मिन् मार्गे सर्वश्रेयोमूलभूतो गुरुरेव।
सचाऽवधूत एव नान्यः। स कोऽवधूत इत्यपेक्षायामाह

भा० टी०—इस मार्ग में समस्त कल्याणों का मूल गुरु ही है, और वह गुरु भी अवधूत ही होना चाहिये, अन्य नहीं। यह अवधूत कौन है इसका उत्तर नीचे के श्लोकों से मिलता है:—

नोट—यहाँ पर इस प्रथम श्लोक का अर्थ संक्षेप से लिखा गया है, जो पाठक महानुभाव इसका विस्तृत अर्थ देखना चाहें वह ग्रन्थ के अन्त में देखें।

वचने वचने वेदा स्तीर्थानि च पदे पदे ।
दृष्टौ दृष्टौ च कैवल्यं सोऽवधूतः श्रियेस्तु नः ॥४॥
एकहस्ते धृतस्त्यागो भोगश्चैककरे स्वयम् ।
अलिप्तस्त्यागभोगाभ्यां सोऽवधूतः श्रियेस्तु नः ॥५॥

भा० टी०—जिसका प्रत्येक वचन वेद है, अर्थात् ज्ञान से भरा हुआ है। जिसका प्रत्येक चरण तीर्थ है, अर्थात् जिसमें दूसरों को तारने की शक्ति है, और जिसकी दया दृष्टि में कैवल्य है। अर्थात् जिनकी दया दृष्टि पड़ते ही शिष्य के सब दुःख दूर हो जाते हैं। वह अवधूत हमको कल्याण का मार्ग दिखाए। जिसके एक हाथ में त्याग और एक हाथ में भोग है, अर्थात् जिसकी दया दृष्टि से सब कुछ प्राप्त होता है परन्तु आप दोनों से निर्लेप हैं, वह अवधूत हमें कल्याण का रास्ता दिखावे ॥ ४, ५ ॥

उक्तंहिसिद्धसिद्धान्तपद्धतौ—
सर्वान् प्रकृतिविकारानवधुनोतीत्यवधूतः ।

भा०—जो समस्त प्रकृति विकारों से भिन्न है वह अवधूत है। ऐसा सिद्धसिद्धान्तपद्धति में कहा है।

प्रसरं भासयेच्छक्तिः संकोचं भासयेच्छिवः ।
तयोर्योगस्य कर्ता यः स भवेत् सिद्धयोगिराट् ॥६॥

यह सृष्टि संकोच और विकास का खेल है। शक्ति के कारण यह सृष्टि फैलती है और शिव इसको सङ्कुचित अर्थात् अपने में लीन कर लेता है, तात्पर्य यह है कि–जब शक्ति प्रबल होती है तब बहिर्मुख होकर संसार को रचती है। और शिव प्रबल होकर शक्ति को जब अपने में लीन कर लेता है। तब प्रलय होता है। इस संकोच–विकास अर्थात् सृष्टि और प्रलय रूप योगका जो कर्ता है वही सिद्धयोगिराजों में उत्तम है॥ ६॥

अवधूतगीतायामुक्तम्—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सम्पूर्णं परमात्मनि।
भिन्नाऽभिन्नं न पश्यामि तस्याहं पंचमाश्रमी॥ ७॥

ब्रह्मा से लेकर जड़वर्गपर्यन्त सृष्टि को उस सर्वाधार प्रभु से न मैं भिन्न देखता हूं न अभिन्न, मैं उसी का रूप हूं और वर्णाश्रम से अतीत हूं॥ ७॥

सूतसंहितायाम्—

अति वर्णाश्रमी प्रोक्तो गुरुःसर्वाधिकारिणाम्।
न कस्यापि भवेच्छिष्यो यथाऽहं पुरुषोत्तमः॥ ८॥

यथाह पुरुषोत्तम इति विष्णुं प्रति शिववचनम्,

अतिवर्णाश्रमी साक्षाद् गुरूणां गुरुरुच्यते।
न तत्समो नाधिकश्चास्मिल्लोकेऽस्त्येव न संशयः॥९॥

सूत संहिता में वर्णन किया है कि सब वर्णों और आश्रमों से जो अतीत है वही सब वर्णों और आश्रमों का गुरु है। यह

किसी का शिष्य नहीं है। जैसा कि मैं पुरुषोत्तम किसी का शिष्य नहीं हूँ। यह वचन शिवजी महाराज ने विष्णु जी से कहा है। ८॥

जो वर्णाश्रम के अभिमान से मुक्त हो गया है। वह गुरुओं का भी गुरु है, उसके बराबर या उससे बढ़ कर संसार में कोई नहीं है। इस में किसी को सन्देह न करना चाहिये। ६॥

उक्तं ब्रह्मबिन्दूपनिषदि—

पक्षपातविनिर्मुक्तं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।
स्वरेण साधयेद् योगमस्वरं भावयेत् परम् ॥
अस्वरेण हि भावेन भावो नाऽऽभाव इष्यते ।
तदेवनिष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरंजनम् ॥
तद् ब्रह्माऽहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म सम्पद्यते ध्रुवम् ।

योगी, स्वर से योग को सिद्ध करे। यहां योग पद का अर्थ समाधि है, और स्वर पद के अनेक अर्थ हैं, नाक से जो श्वास बाहर निकलता है और भीतर जाता है वह स्वर कहलाता है जैसे कि 'शिव स्वरोदय, में कहा है, उसके द्वारा अर्थात् रेचक पूरक द्वारा कुम्भक रूप समाधि को सिद्ध करे। अथवा स्वर इस पद का 'नादलय' अर्थ भी हो सकता है। परन्तु उसकी प्रक्रिया कठिन है अतः उसका यहां लिखना उपयुक्त नहीं। अथवा स्वर से ओंकारादि निज २ गुरुओं के बताए मंत्रों से। यहां पर स्वर पद साधन है इस से सिद्ध होता है कि सिद्ध

करने योग्य शुद्ध सच्चिदानन्द इस स्वरपद से अभिन्न है उसी की भावना करे। इस में किसी को सदेह हो कि स्वर से रहित हो जाने पर शून्य हो जायेगा, इस सदेह को हटाने के लिये कहते हैं-यह अभाव शून्य नहीं है किन्तु भाव रूप है उसका किस प्रकार ध्यान करे सो कहते हैं वह ब्रह्म सब प्रकार के भेद धर्म अधर्म संकल्प विकल्प इत्यादि संसार के व्यवहार से रहित है, वही मैं हूं। इस प्रकार अभेद भावना करे, ऐसी दृढ़ भावना हो जाने पर योगी अवश्य सच्चिदानन्दरूप हो जाता है।

तत्राऽऽशङ्कते—पक्षपात क इति, देहाभिमान एव सः। सोपि क इति। ब्राह्मणोऽहं क्षत्रियोऽहं वैश्योऽहं शूद्रोऽहं पुनरन्त्यजोऽहं ब्रह्मचारी अहं गृहस्थोऽहं वानप्रस्थोऽहं संन्यासहमुत्तमोऽहं मध्यमोऽहमधम इत्यादि। संकल्प एव सः। तं संकल्पं विहाय सर्वं व्यापकं परमनाथं याथातथ्येन पश्यत्यथ मुक्तो भवति तादृश एव स्यादिति। तथा च वर्णाश्रमादिव्यवहारमतीत्य नाथं साक्षात्कुर्वतो मुक्तिरिति।

यहां कोई शंका करता है कि पक्षपात से क्या तात्पर्य है? देहाभिमान ही पक्षपात है। देहाभिमान क्या है? मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूं मैं वैश्य हूं शूद्र हूं अंत्यज हूं ब्रह्मचारी गृहस्थ वान-

ग्रस्थ या संन्यासी हूँ, अथवा मैं उत्तम मध्यम और अधम हूं, यही देहाभिमान और संकल्प है इस संकल्प को छोड़ कर सर्वव्यापक परमनाथ के दर्शन जब यथार्थ रूप से कर लेता है तब यह वैसा ही होजाता है। तात्पर्य यह है किवर्णाश्रम के व्यवहार से अतीत होने पर श्री नाथजी के साक्षात् कार से मुक्ति प्राप्त होती है।

यदि कोपि वदेद् वर्णाश्रमाचार व्यवहारं त्यक्तवतः परम योगिनो मुक्तिर्भवतु नाम । वर्णाश्रमाचारवतः सा कथं न भवेत् ? "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय" इत्यादीनि कानिचिच्छास्त्रवाक्यान्यवलम्ब्य वदन्ति चामुको गृहस्थो मुक्तश्चामुको भिक्षुरिति। तत्रोच्यते—गुणानतीत्यैव मुक्तो भवेन्न तु गुणाभिमानीति सम्मतः सिद्धान्तो भवत्येव। वर्णव्यवहारे तु न संभवति गुणातीतत्वम् कथं ? वर्णमात्रस्यापि गुणनिर्मितत्वादिति । उक्तंच गीतायाम् –"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विध्यकर्तारमव्ययम्" तथा न गुण सत्वे न मुक्तिरिति।

तत्र वादी वदति—वर्णाभिमानिनः किं न त्यजन्ति गुणानिति, यदि गुणां स्त्यजेयुस्तर्हि कथं वर्णसद्भावः, गुणमूलकत्वादेव वर्णत्वस्य। तथा चाऽऽश्रमित्वं स्यात्। तदा

यादी वदति भवद्भिस्त्वाश्रमिणोपि गुणातीतत्वाभावान्मुक्तिर्नेत्युच्यते साच भवद्वचनक्रमेणाप्यायास्यति तत्र किमुत्तरमिति।

उच्यते—नैवमाश्रमिणो मुक्तिरायाता, कथम्?

आश्रमाणामपि गुणमूलकत्वात्।

प्रथमतो वर्णव्यवहारेण गुणभजनम्॥

गुणवृत्तिषु च सत्वगुणवृत्तयः उत्तमाः,

रजस्तमो वृत्तयस्ततोनिकृष्टा इति कृत्वा गुणेष्वप्युत्तमादित्वंस्यात्। परन्तु गुणवृत्तित्वं तु सर्वसाधारणम्। अतो नास्ति गुणवृत्तीनां मुक्तिसाधकत्वम्। तत्र दृष्टान्तो यथा—द्वे स्त्रियौ रूपवत्यौ भवतस्तयोर्द्वयोरपि संयोगे न भवेद् गर्भोत्पत्तिः। किन्तु तद्धर्मभिन्नत्वेन पुरुषेणैव सा भवेत्।

किंच सौन्दर्यतारतम्येनैकस्या अपरा अधिका न्यूना वा भवतु नाम, परन्तु भोक्ता तु तयोरपि पुरुष एव। नास्ति तयो रन्योन्यं भोक्तृभोग्यत्वम्। तथा नास्ति वर्णानां साक्षान्मुक्तिविषयेऽन्योन्यंगुरुशिष्यत्वम्। किंच, आश्रमिणोपि प्रथमतो वर्णाभिमानेन गुणभाज एव। ते चोत्तरत्रापि प्रारब्धमभिमत्य भोगभाजो भवन्ति, तेन

च प्रारब्ध कर्मणां भोगोऽवश्य इतिकृत्वा कर्मणां सत्यत्वं तावद् दर्शयति, यतो गुणलेश एतेषामपि न निवृत्तो यतो मुक्तत्वपुरुषार्थविहीनास्तेपि नपुंसकप्रायाःसन्तो न मुक्तिश्रियमर्हन्ति। यद्यपि नपुंसकाः पुरुषवेषिणो वर्तन्ते तथापि पुरुषत्वेन सन्ततिसम्पादका न भवन्ति। एवं वेष मात्रेणाश्रमिणोपि सम्मानपूजाद्यर्हन्तु नाम गुरुत्वम्। अतोगुणातीतत्वेन अत्याश्रमिण एव मुक्तिप्रदगुरुत्वम्। नाऽन्यस्य कस्यापीति बहुधा शास्त्रे निरूपितम्

भा० टी—यहां कोई शंका करता है कि वर्णाश्रमों के आचार और व्यवहार को त्यागने वाले परमयोगी को यदि आप मुक्ति का अधिकारी मानते हैं तो यह ठीक है, परन्तु वर्णाश्रमों के आचार का परित्याग किये बिना मुक्ति नहीं होती, यह कैसे हो सकता है। 'जनकादि कर्म से ही सिद्धि को प्राप्त हुए, इत्यादि शास्त्र वाक्यों का आश्रय लेकर बहुत से कहते हैं, कि यह गृहस्थ मुक्त हो गया, यह संन्यासी मुक्त होगया, इसका उत्तर यह है कि-गुणातीत होकर ही मुक्त होता है। गुणाभिमानी मुक्त का अधिकारी नहीं है। यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है ही, और वर्ण व्यवहार में गुणातीत होना सम्भव ही नहीं क्यों कि वर्णों का तो निर्माण गुणों के आधार पर हुआ है।

जैसा कि गीता में कहा है-मैंने गुण कर्म के विभाग से चारों वर्ण उत्पन्न किये हैं। मैं यद्यपि विकार रहित अकर्ता हूं-तथापि चारों वर्णों का निर्माता तू मुझे ही समझ।

इसलिए गुणों के रहते हुए मुक्ति कहाँ?

वादी फिर शंका करता है कि वर्णाभिमानी क्या गुणों को नहीं छोड़ते? यदि वे गुणों को छोड़ दें तो उस २ वर्ण वाले कहला हो कसे सकते हैं। क्योंकि वर्णव्यवहार का मूल कारण ही गुण है इसी प्रकार आश्रमवादी भी, गुणातीत न होने के कारण मुक्ति भागी नहीं हो सकते।

यहां फिर वादी कहता है कि आप तो आश्रम वालों को भी गुणातीत न होने के कारण मुक्ति का अधिकारी नहीं मानते, परन्तु आपने वर्णों को गुण मूलक बतलाया है आश्रमों को नहीं। इस लिए आपके ही वचन से आश्रम वाले भी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसका क्या उत्तर है? सुनिये आश्रम वालों का भी मुक्त होना हमारे वचन से सिद्ध नहीं होता क्योंकि आश्रम भी गुणों के आधार पर ही निर्मित हुए हैं। पहले तो वर्णों के अभिमान में गुणों का सेवन होता है। बाद में वर्ण व्यवहार से आश्रम का अभिमान होने पर गुण सम्बन्ध नहीं छूटता। कोई कहे कि रजोगुण तमोगुण निकृष्ट हैं इस लिए ये बन्धन श्रेणी में माने जाय किन्तु सत्वगुण को तो सभी उत्तम मानते हैं उसको आप क्यों बन्धन कोटि में गिनते

हैं। इसका उत्तर यह है कि गुणों की वृत्तियों में भी सत्त्वगुण की वृत्तियां उत्तम हैं, रजोगुण और तमोगुण की वृत्तियां निकृष्ट हैं। इस प्रकार गुणों की वृत्तियों में उत्तम, मध्यम और अधमपना है। यद्यपि सत्त्वगुण उत्तम है परन्तु गुणयुक्तपना उस में भी है इसलिए गुणों की वृत्तियां मुक्ति का खास स्वरूप नहीं हैं। इस बारे में एक दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे दो स्त्रियाँ चाहे कितनी भी रूपवती हों पर उनके संयोग से गर्भोत्पत्ति नहीं हो सकती। यह तो उनसे भिन्न धर्म वाले पुरुष से ही हो सकता है। सौन्दर्य की न्यूनता या अधिकता से उनमें कोई कम या ज्यादा हो, पर भोक्ता उनका पुरुष ही है। उनका आपस में भाक्तृ भोग्य सम्बन्ध नहीं हो सकता, इसी से वर्णाभिमानियों का मुक्ति विषय में आपस में गुरु शिष्य सम्बन्ध नहीं है। आश्रम वालों में भी वर्ण का अभिमान होता है। इसलिए वे भी गुणों की ही सेवा करने वाले हैं, अगले जन्म में भी प्रारब्ध कर्म का फल उन्हें भोगना पड़ेगा, क्योंकि किये हुए कर्मों का भोग आवश्यक है इस प्रकार वे कर्मों को सत्य मानते हैं। इसलिए आश्रमवालों में गुणलेश रहने के कारण मुक्ति योग्य पुरुषार्थ से रहित वे नपुंसकों की तरह मुक्तिरूप सौभाग्य को प्राप्त करने योग्य नहीं हैं। नपुंसक यद्यपि पुरुष वेष में पुरुष जैसा प्रतीत होता है, पर सन्तान तो उत्पन्न नहीं कर सकता, इसी तरह वेष के कारण आश्रम वालों का भी

सम्मान पूजा योग्य गुरुत्व चाहे हो तथापि गुणातीत होने के कारण मुक्ति देने वाला गुरु तो वर्णाश्रमातीत अवधूत ही हो सकता है, और कोई नहीं इसका शास्त्रों में बहुत कथन किया गया है।

उक्तं च कैवल्योपनिषदि—

मू०—विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीव शिरः शरीरः। अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य।

भा० टी० जैसा कि कैवल्योपनिषद् में कहा है—

भक्ति पूर्वक गुरु को प्रणाम कर एकान्त स्थान में सुखासन लगाकर गर्दन और शिर और समस्त शरीर को ठीक सीधा करके आश्रम के अभिमान को छोड़ सब इन्द्रियों को रोक कर पवित्र मन से अवधूत ध्यान करे।

तेजोबिन्दूपनिषदि—

मू० लोभं मोहं भयदर्पं कामं क्रोधं च किल्बिषम्।
शीतोष्णे क्षुत्पिपासे च किल्बिषम्।
न ब्रह्मकुलदर्पं च न मुक्तिग्रन्थिसंचयम्।
न भयं सुखदुःखं च तथा मानाऽपमानयोः॥
एतद्भावविनिर्मुक्तं तद्ग्राह्यं ब्रह्म तत्परम्।

भा० टी०—तेजोपनिषद् में भी कहा है—

लोभ मोह भय दर्प काम क्रोध पाप शीत गर्मी भूख प्यास संकल्प विकल्प सब को त्यागदे। ब्राह्मण कुल का अभिमान तथा मुक्ति का ग्रन्थि संचय अर्थात् काम क्रोधादि का समूह, भय और मानापमान इन से उत्पन्न सुख दुःख जिसने छोड़ दिया वह ब्रह्म सरूप होजाता है, क्योंकि ब्रह्म भी इन सब भावों से रहित है।

अमनस्केऽपि लिखितम्—

मू० कुलाचारविहीनस्तु गुरुरेको हि दुर्लभः।

वर्णाश्रमिष्वयुक्तं नास्ति वर्णाश्रमाचारे सर्वारम्भ परित्याग इति।

पुनरेवं चावधूत एव सन्मार्गदर्शनशीलो भवति, स एव गुरुर्मुमुक्षुभिः कर्तव्यः।

फलितानेकपुण्यानां मुमुक्षूणां हितावहम्॥

साधनं साधनश्रेष्ठमाह योगमतः परम्॥

भा०—अमनस्क नामक ग्रंथ में लिखा है कि वह गुरु अति दुर्लभ है, जिसको कुलाचार का अभिमान नहो, गुरु सर्वारम्भ परित्यागी होना चाहिये, वर्णाश्रमियों में यह बात नहीं हो सकती, इसलिए अवधूत ही सच्चा मार्ग दिखा सकता है,

मुक्ति के चाहने वालों को यही गुरु बनाना चाहिये।

पूर्वजन्मार्जितपुण्य के प्रभाव से मुक्ति की इच्छा करने वाले सब साधनों में श्रेष्ठ परमसाधन योग है।

सिद्धसिद्धान्तपद्धतौ

सन्मार्गश्च योगमार्गस्तदितरस्तु पाषण्डमार्गः।

तदुक्तमादिनाथेन—

'योगमार्गेषु तंत्रेषु दीक्षिता स्तांस्तु दूषकाः।
ते हि पाषण्डिनः प्रोक्ता स्तथा तैः सहवासिनः॥
योगमार्गात्परो मार्गो नास्ति नास्ति श्रुतौस्मृतौ।
शास्त्रेष्वन्येषु सर्वेषु शिवेन कथितं पुरा॥

भा०—सिद्धसिद्धान्तपद्धति में कहा है कि योगमार्ग ही सच्चा मार्ग है बाकी सब पाषण्ड मार्ग है। यही आदिनाथ जी ने भी कहा है कि योगमार्ग में दीक्षित अर्थात् योग मार्गावलम्बियों की जो निन्दा करते हैं। वे सब दूषक और पाखण्डी हैं, और जो उनके साथ रहते हैं, वे भी पाखण्डी हैं। योगमार्ग से उत्तम मार्ग श्रुति स्मृति तथा अन्य शास्त्रों में नहीं है, ऐसा शिव जी ने कहा है।

विवेक मार्त्तण्डे—

योगशास्त्रं पठेन्नित्यं किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
यत्स्वयं चादि नाथस्य निर्गतं वदनाम्बुजात् ॥

भा०—विवेक मार्तण्ड में भी कहा है—

योगशास्त्र को नित्य पढ़े अन्य वृथा विस्तृत शास्त्रों से क्या लाभ, क्योंकि शास्त्र स्वयं आदिनाथ जी के मुखकमल से निकला है।

ध्यान बिन्दूपनिषदि—

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं योजनाद्वह, ।
भिद्यतेध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन ॥
वर्णाश्रमाभिमानेन वर्तते श्रुतिकिङ्करः ।
अभिमानविहीनस्तु वर्तते श्रुतिमूर्धनि ॥
उत्सृज्यसर्वशास्त्राणि जपहोमादि कर्म च ।
धर्माधर्म विनिर्मुक्तो योगी योगं समभ्यसेत् ॥
न वेदो वेद इत्याहुर्वेदा वेदो निगद्यते ।
परात्मा विद्यते येन स वेदो वेद उच्यते ॥
वर्णधर्म च मन्ध्या विहिता तत्मातिरूपकमाह—

जाता है, अंगिरस ने शौनक से कहा-ब्रह्मवादी लोग
हैं कि दो विद्याएं जाननी चाहिये परा और अपरा, जिन
से ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद शिक्षा कल्प
निरुक्त छंद ज्योतिष इतिहास पुराण न्याय मीमांसा धर्म
शास्त्र यह सब अपरा विद्या है। और परा विद्या वह है
से उस अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान होता है।

यहां जिस से अक्षर ब्रह्म का ज्ञान हो वह परा विद्या ऐसा कहा गया है सो वह योगविद्या ही है, क्योंकि श्रुति स्मृति पुराणादि सब विद्याएं तो अपरा विद्या में गिनाई गई हैं। परन्तु योगविद्या नहीं गिनाई गई है, इस लिये इन पूर्वोक्त विद्याओं से अलग योग विद्या का परा विद्या होना साफ २ जाहिर होता है।

मू० तदुक्तमात्मोपनिषदि—

अथ परमात्मा नाम यथाक्षरमुपासनीयः।

सच प्राणायामप्रत्याहारसमाधियोगाऽनुमानाध्यात्मचिन्तकं वटकणिकं श्यामाकतंडुलवालाग्रशतसहस्र कल्पनादिभिर्न लभ्यते न जायते न म्रियते न शुष्यते न दह्यते न कम्पते निर्गुणः साक्षीभूतः। शुद्धो निरवयवात्मा केवलः सूक्ष्मो निष्कलो निरंजनो निरभिमानः शब्द स्पर्श

रूप रस गन्ध वर्जितो निर्विकल्पो निराकांक्षः सर्वव्यापी सोऽचिन्त्योऽवर्णश्च पुनात्यशुद्धान्यपूतानि निष्क्रियः संस्कारो नास्ति संस्कारो नास्तीत्येष परमात्मेति ।

भा० टी०—आत्मोपनिषद् में भी कहा है-परमात्मा की अक्षरों के अनुसार उपासना करनी चाहिये, उस परमात्मा को प्रत्याहार समाधि याग और अनुमान यथा सम्भव इन सबकी सहायता से आत्मचिन्तन करने वाला वट के बीज जैसा साँवक के बीज जैसा बाल की नोंक के सौवें हिस्से जैसा इत्यादि कल्पनाओं से नहीं जाना जा सकता, वह न उत्पन्न होता है। न मरता न सूखता न जलता और न काँपता है। वह निर्गुण साक्षीभूत है, वह शुद्ध निरवयव केवल सूक्ष्म कलारहित अव्यक्त निरभिमान शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इत्यादिकों से रहित निर्विकल्प निराकांक्ष सर्व व्यापक अचिन्त्य और वर्णनातीत है।

पतित पावन क्रियाओं तथा संस्कारों से रहित जो है सो परमात्मा है।

मू०—तंच अमृतनादोपनिषदि स्पष्टमाह—

शास्त्राण्यधीत्य मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः।
परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कावत्तान्यथोत्सृजेत्॥

ब्रह्मपद को ढूंढने वाला रुद्र के ध्यान में संलग्न साधक ओंकाररूपी रथ पर चढ़ कर और विष्णु को सारथी बना जहां तक रथ से जाना चाहिये वहां तक रथ से जाय फिर ठीक स्थान पर रथ को खड़ा कर और उसे छोड़ आगे जाता है।

ओंकार में अ-उ-म् ये तीन मात्रा हैं इनके अध्यक्ष भी विराट् १ हिरण्यगर्भ २ और माया सहित ईश्वर ये तीन हैं, इन तीनों की भावना छोड़ कर केवल ब्रह्म रूप से भावना करे उस भावना का फल अकारादि स्वर और ककारादि व्यञ्जनों से रहित विशुद्ध ब्रह्म पद प्राप्त होना है।

शब्दादि पांच विषय और अतिचंचल मन इनको रोक कर आत्मा के प्रकाश का ध्यान करे इसको प्रत्याहार कहते हैं।

प्रत्याहार ध्यान प्राणायाम और धारणा तर्क तथा समाधि यह षडंग योग कहा जाता है। इस प्रकार समाप्ति तक योग का वर्णन है।

उक्तं च मनुस्मृतौ—

मू०—क्षरन्तिसर्वावैदिक्योजुहोतियजतिक्रियाः।
अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः॥

भा०टी०—हवनादि जितनी वैदिक क्रियाएँ हैं वे सब नष्ट होने वाली हैं, अतः 卐 से उस प्रजापति अक्षर का ज्ञान होना

असत्मय है किन्तु प्रजाओं का अधिष्ठान परब्रह्मस्वरूप ओंकार ही ब्रह्म की प्राप्ति का मुख्य साधन है।

उत्तरगीतायाम्—

यथा घृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम्।
एवं तत्त्वपदे प्राप्ते वेदे नास्ति प्रयोजनम्॥
पुराणं भारतं वेदा धर्मशास्त्राण्यनेकशः।
पुत्रदारादिसंसारो योगमार्गस्य विघ्नकृत्॥
मुहूर्तमपि योगस्थो नासाग्रे मनसा अपि।
सर्वं तरति पापं च तस्य जन्म शतार्जितम्॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
एकस्य ध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा ।
योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणोऽध्यात्मचिन्तकः ॥

भा० टी०—वायु पुराण में कहा है—
ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और उपनिषद् इन सबको आत्मचिन्तक ब्रह्मज्ञानी योगज्ञान से प्राप्त कर लेता है।

मू०—मार्कण्डेय पुराणेऽप्युक्तम्—
एतत्ते कथितं ज्ञानं योगं चेमं निबोध मे ।
यं प्राप्य ब्राह्मणो योगी शाश्वतीं मान्यतां व्रजेत् ॥
एवं बहुधा शास्त्रेषु योगस्य प्रशंसा विदितैव ।
तस्या दिङ्मात्रमिदं दर्शितम् ।

भा० टी०—मार्कण्डेय पुराण में कहा है—
यह ज्ञान आप से कहा—अब तू मुझ से योग को समझ जिस को प्राप्त कर के योगी अनन्त प्रतिष्ठा को प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार शास्त्रों में योग की प्रशंसा सब जगह विदित है, यहां तो केवल दिग्दर्शन मात्र किया गया है।

मू०—तस्य योगस्य लक्षणं तु विवेकमार्तण्ड उक्तम्—

योगं चात्र प्रवक्ष्यामि योगं चाऽष्टांगसंयुतम् ।
संयोगं योगमित्याहुः क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः ॥
एतस्यैव योगादीन्यङ्गानीति ज्ञेयम् ।
सन्मार्गत्वेन योगस्तु सेव्यो हित्वान्यसाधनम् ।
मुमुक्षुभिर्यतस्तेषां पदप्राप्तिः परा भवेत् ॥
योगिनो वीतसंकल्पा निर्द्वन्द्वाः पुण्यदर्शनाः ।
योगरत्नकरण्डास्ते जयन्त्यविधिगोचराः ॥

भा० टी०—उस योग का लक्षण विवेक मार्तण्ड में कहा है—

अब योग का वर्णन किया जाता है । योग आठ अंगों से युक्त है । जीवात्मा परमात्मा के संयोग (एक हो जाने को) योग कहते हैं । इस अभेद के योगइत्यादि बाहुन से अंग हैं । ऐसा जानना, और साधनों को छोड़ कर मुमुक्षु लोगों को योग का ही सेवन करना चाहिये, यही सर्वोत्तम श्रेष्ठ मार्ग है ।

वे योगी सर्वश्रेष्ठ हैं जो संकल्प विकल्प काम क्रोधादि तथा शीतोष्ण सुख दुःखादि रूप द्वन्द्वों से रहित हैं जिन के ऊपर वेद विधि का अनुशासन नहीं है । योगरूपी रत्नों की खान हैं तथा जिन के दर्शन मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है ।

भू० तद्वतामेव परमपदप्राप्तिरिति तेषां स्वरूपं प्रशंसां चाह कैवल्योपनिषदि—

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचिःसमग्रीवशिरः शरीरः। अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य ॥

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धंविचिन्त्य मध्येविशदं विशोकम् अनन्तमव्यक्तमचिन्त्य रूपं शिवं प्रशान्तममृतंब्रह्मयोनिम् ॥

तमादिमध्यान्तविहीनमेकंकंविचिदानन्दमरूप मद्भुतम्। उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकंठं प्रशान्तम्।

ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्॥ स ब्रह्मा स शिवः सोऽक्षरः परमः स्वराट् स एव विष्णुः स प्राणः स आत्मा परमेश्वरः। स एव सर्वं यद्भूतं यच्चभव्यंसनातनंज्ञात्वातंमृत्युमत्येति नान्यः पंथा विमुक्तये ॥

सब रूप सब से विलक्षण और पृथक् होता है। इस प्रकार जहां तहां सिद्धसिद्धान्तपद्धति आदि योगग्रन्थों में वर्णन किया गया है। अधिक जानने वालों को वहीं देखना चाहिए विस्तार होजाने के भय से यहां अधिक नहीं लिखा जाता। इस प्रकार मुक्ति के सब साधनों में सर्वोत्तम योग की मूर्ति अवधूत ही परम पुरुषार्थ में निपुण होते हैं वेही सब के शिरोमणि हैं, उनकी जय होती है।

मोक्ष मार्ग के साधक वर्णाश्रम परिपाटी की परवाह न करने वाले अवधूत योगियों का संक्षेप से वर्णन किया गया है।

मू०—परमः पुरुषार्थस्तु मुक्तिरुक्ता ऽतस्तु सा। निरूप्यतेऽवधूतानां योगसाधनजं फलम् ॥ परमपुरुषार्थस्तु मुक्तिरित्युक्तम्। सा च नाथस्वरूपेणाऽवस्थानम्।

तत्स्वरूपन्तु गोरक्षोपनिषदि अद्वैतोपरि सदानन्ददेवता ब्रह्मोपनिषदि—स्वयममनस्कमश्रोत्रपाणिपादं ज्योतिर्विदं तत्र लोका न लोका वेदा न वेदा देवा न देवा यज्ञा न यज्ञा माता न माता पिता न पिता स्नुषा न स्नुषा चाण्डालो न चाण्डालः पौल्कसो न पौल्कसः श्रमणो न श्रमणः, पशवो न पशवः तापसो न तापस इत्येकमेव पराभिति।

ब्रह्म विन्दौच—

नैवचिन्त्यं नचाऽचिन्त्य मचिन्त्यंचिन्त्यमेव च इत्यादि ।

सर्वोपनिषत्सारे—

कथं बन्धः कथं मोक्ष, इत्यादि प्रश्ने अनात्मनो देहादीना रमत्वेनाभिमन्यते सोभिमानआत्मनोबन्धस्तान्निवृत्ति मोक्ष इत्य नेन स्वरूपेणाऽवस्थान मिति सिद्धम् ।

भा० टी० पहले कहा जा चुका है कि परम पुरुषार्थ तो मुक्ति है अतः वही अवधूतों के योग साधन से उत्पन्न होने वाला फल है, उस का निरूपण किया जाता है, वह मुक्ति क्या है ? नाथ रूप से स्थिति का ही मुक्ति कहते हैं। जैसा कि तं दत्तोपनिषद् में कहा है—

अद्वैत के ऊपर सदानन्द देवता है। ब्रह्मोपनिषद् मे 'भी' जो बिना कारण के स्वयं है तथा मन श्रोत्र हाथ पैर इन से रहित प्रकाश स्वरूप है वहां लोक लोक नहीं, वहां वेद वेद नहीं द्वेष द्वेष नहीं, यज्ञ यज्ञ नहीं, माता माता नहीं, पिता पिता नहीं, पुत्र वधू पुत्र वधू नहीं, चांडाल चांडाल नहीं, अन्त्यज अन्त्यज नहीं, भिक्षु भिक्षु नहीं, पशु पशु नहीं, तापस तापस नहीं केवल एक परूप ही होता है।

महाबिन्दूपनिषद् में भी कहा है—

कि यह न सोचने योग्य न विचारने योग्य हैं विचार योग्य न

होते हुए भी विचार योग्य है, इत्यादि।

सर्वोपनिषत् सार में कैसे बन्ध और कैसे मोक्ष होता है इत्यादि प्रश्न करके देहादि अनात्मवस्तुओं में आत्मपने का अभिमान ही बन्ध है, और उसको निवृत्ति ही मोक्ष है। इससे यह सिद्ध हुआ कि आत्मा की अपने रूपस्थिति ही मोक्ष है।

उक्तंचाऽमनस्के—

भावाभावविनिर्मुक्तं नाशोत्पत्तिविवर्जितम्।
सर्वसंकल्पनातीतं परब्रह्म तदुच्यते ॥

अवधूतगीतायां च—

अद्वैतं के चिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
समं तत्त्वंनविन्दन्ति द्वैताऽद्वैतविलक्षणम् ॥
यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः।
अहो माया महामोहो द्वैताद्वैतविकल्पना ॥

श्रीनित्यनाथकृतसिद्धसिद्धान्तपद्धतौ—

न ब्रह्मा विष्णुरुद्रौ, न सुरपतिसुरा नैव पृथ्वी न चापो।
नैवाग्निर्नापि वायु नैच गगनतलं नोदिशो नैव कालः ॥
नो वेदा नैव यज्ञा न च रविशशिनौ नो विधि नैव कल्पाः।
स्वज्योतिः सत्यमेकं जयति तवपदंसच्चिदानन्दमूर्ते ॥

तत्पदेनाऽवस्थानं मुक्तिरिति।

भा० टी०—अमनस्क में जो भावअभाव से विलक्षण नाश और उत्पत्ति से रहित सब कल्पनाओं से परे है वही परब्रह्म कहा जाता है ।

अवधूतगीता में भी कहा है, कि कोई अद्वैत की और कोई द्वैतकी इच्छा करते हैं परन्तु वे सब द्वैताद्वैत विलक्षण समतत्व को नहीं प्राप्त कर सकते। जबकी परब्रह्म बिना भेद के स्थिर पूर्ण और सर्व व्यापक हैं तब बड़ा आश्चर्य है कि माया मोह के वशीभूत होकर लोग उस में भी द्वैताद्वैत कल्पना करते हैं। श्री नित्यनाथ कृत सिद्धसिद्धान्त पद्धति में कहा गया है कि हे सच्चिदानन्द स्वयं प्रकाश भगवान् ! आपके अद्वितीय स्वरूप की जय हो। जहां न ब्रह्मा न विष्णु न रुद्र न इन्द्र और न देव गण हैं। न पृथिवी है न जल है न अग्नि न वायु न आकाश न दिशाएं न काल है, न वेद हैं न यज्ञ अव्यक्त सच्चिदानन्द नाथ रूप में न चन्द्र न सूर्य न विधि और न कल्प हैं ऐसे उस परमात्मा में लीन हो जाना ही मुक्ति है ।

मू०नाथस्य लक्षणं राजगुह्ये—

नाकारोऽनादिरूपं थकारः स्थाप्यते सदा ।
भुवनत्रयमेवैकः श्री गोरक्ष नमोस्तु ते ॥

शक्तिसंगमतंत्रे—

श्री मोक्षदानदक्षत्वान्नाथब्रह्मानुबोधनात् ।
स्थगिताऽज्ञानविभवात् श्रीनाथ इति गीयते ॥

श्रीनाथकृत सिद्धसिद्धान्तपद्धतौ—

आदिनाथं महासिद्धं शक्तियुक्तं जगद्गुरुम् ।
तं वन्दे नित्यतो वक्ष्ये सिद्धान्तं स्वानुभावतः ॥

इत्यादीनि पुराण वाक्यानि प्रमाणानि ।

तस्य निदर्शनं शास्त्राणि सूर्यसदीपा इव कथं करिष्यन्ति, तत्तु पदं तादृग्योगिनामेवापरोक्षमिति सिद्धान्तः।

अन्येतु मतवादिन स्तत्पदमनालम्बमानाःस्वाभिप्रायऽनुसारि तत्पदं विधाय विवादमाराक्रान्त मतयः क्लिश्यन्ति नतु शाम्यन्तीत्याह सिद्धसिद्धान्तपद्धतौ—

भा० टी०—नाथ का लक्षण राजगुह्य नामक पुस्तक में लिखा है ना शब्द का अर्थ है अनादि रूप, 'थ' का है। अर्थ स्थित होना। तीनों लोकों के एक कारण अनादि रूपसे स्थित हैं गोरक्षनाथ जी मैं आप को नमस्कार करता हूं।

शक्ति संगम तंत्र में भी कहा है—आनन्द रूप मोक्ष के देने में उदार होने से तथा सर्वाध्यक्ष ब्रह्म का अनुभव होने से और अज्ञान का नाशक होने से सद्गुरु नाथ जी कहे जाते हैं।

श्रीनाथकृत सिद्धसिद्धान्त पद्धति में–उस प्रसिद्ध महा सिद्ध अव्ययशक्ति सहित जगद्गुरु श्री आदिनाथ को नमस्कार करके अपने अनुभव से सिद्धान्तों का वर्णन करता हूं। इत्यादि पुराण वाक्य प्रमाण हैं।

सूर्य को जैसे अनेक दीपक भी प्रकाशित नहीं कर सकते वैसे ही शास्त्र उसका प्रकाशित नहीं कर सकते। वह तो महा सिद्ध योगियों को ही प्रत्यक्ष अनुभव से सिद्ध है, यह सिद्धान्त हैं।

अन्य सबमत वादी लोग तो उस परम पद को न जानते हुए अपने अभिप्राय के अनुसार उस पदको समझते और बताते हुए दुःख उठाते हैं शान्ति को प्राप्त नहीं होते। इसी बात का वर्णन सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में किया गया है। आगे देखो।

मू०—वेदान्ती बहुतर्क कर्कशमतिर्ग्रस्तः परं मायया।
भाट्टाः कर्मफलाकुला हतधियो द्वैतेन वैशेषिकाः॥
अन्ये भेदरता विवाद विकलास्ते तत्वतो वंचिताः।
तस्मात् सिद्धमतं स्वभाव समयं धीरः पर संश्रयेत्॥

अस्यार्थः—वेदान्तावित् उत्तर भाग शास्त्रवादी अद्वैते वस्तुनि अध्यारोपाऽपवादाभ्यां द्वैत कल्पनां कुर्वन् बहुभि-स्तर्कैः कर्कशा कठोरा मतिर्यस्य स अत एव परमं केवलं

मायया ग्रस्तो यतो निर्मायिकं वस्तु वदन् मायादूषणं च तत्र ददाति। पुन र्भाट्टा मीमांसका अनीश्वरवादमारोपयन्तः कर्मफलेष्वेवाकुलिताः सन्तोगतधियो भवन्ति। तथा द्वैतेन द्वैतवादेन वैशेषिका अपि गतधिय एव,तदन्येपिये भेदवादरतास्तेऽपि विवाद विकला एव भवन्ति यत एते तत्वतो वंचिता भवन्ति नतु तत्त्वमालम्बन्ते, इत्यर्थः। तस्मान्महासिद्धानां स्वाभाविकं सहजावस्थामयं मतं धीरः पुमान् संश्रयेत् तदेव श्रेयस्करमितिमान्यम्।

भा०—वेदान्ती अर्थात् उत्तर मीमांसा वादी अद्वैतवस्तु अर्थात् शुद्ध ब्रह्म में अध्यारोप और अपवादों से द्वैत कल्पना करते हुए तर्कों से कठोर मति वाले केवल परम तत्त्व को माया रहित होते हुए भी माया से दूषित करते हैं।

भट्ट मतवादी पूर्व मीमांसक लोग अनीश्वर वाद से शास्त्रों को कलंकित करते हुए कर्मफल में ही व्याकुल होकर बुद्धिहीन हो जाते हैं। वैशेषिक शास्त्रवादी भी अद्वैत में द्वैत की कल्पना करते हुए बुद्धि को तिलांजलि दे बैठते हैं। और अन्य मतवादी 'भेदवाद के झगड़ों में पड़े रहने के कारण तत्त्व से वंचित रहते हैं। तत्त्व को नहीं जानते, इसलिये बुद्धिमान

जिज्ञासु को महासिद्धों के स्वाभाविक असली मत का ही ग्रहण करना चाहिये वही कल्याणकारक है यह निश्चित है।

मू० सांख्या वैष्णव वैदिका विधिपराः संन्यासिनस्तापसाः।
सौरा वीरपराः प्रपंचनिरता बौद्धाजिनाः श्रावकाः।
एते कष्टरता वृथापथगतास्ते तत्त्वतो वंचिताः।
तस्मात् सिद्धमतं स्वभावसमयं धीरः परं संश्रयेत्॥

अस्यार्थः सांख्याः प्रकृतिकारणवादिनः कपिल मतानुयायिन इति यावत्, वैष्णवाः पाञ्चरात्राः। वैदिका वेदानुवर्तिनस्ते च विधिपरा वाक्यकोविदा इत्यर्थः। स्पष्टमन्यत्।

पुनः—आचार्या बहुदीक्षिता हुतिरता नग्न व्रता स्तापसाः। नाना तीर्थनिसेवका जिन परा मौनेस्थिता नित्यशः॥
एते ते खलु दुःखभार निरतास्ते तत्त्वतो वंचिताः।
तस्मात् सिद्धमतं स्वभाव समयं धीरः परंसंश्रयेत्॥

अस्यार्थः—आचार्यामंत्रव्याख्यातारो बहुदीक्षिता अग्निहोत्रादिकर्तारः त एवाऽऽहुतिपरा न तुतत्त्व परा अजिनपरा वल्कलवाससस्ते तीर्थनिषेवका यद्वा जपपरा। शेषं स्पष्टम्।

भा०—प्रकृति को जगत् का कारण मानने वाले सांख्य वादी कपिल मतानुयायी वैष्णव पांचरात्र मत वाले नाना वाक्य विशारद वैदिक संन्यासी तापस और पूजक सूर्योपासक और प्रपंच रचना में लगे हुए बौद्ध जिन और श्रावक ये सब असत् मार्ग पर चलते हुए व्यर्थ ही कष्ट को उठाते हुए सत्य तत्त्व से वंचित रहते हैं, इस लिये सिद्ध मतको ही अपनाना चाहिये।

मंत्रों की व्याख्या करने वाले बहुत से दीक्षित आचार्य आहुति देने में ही लगे रहते हैं, उन्हें तत्वज्ञान नहीं हो सकता बहुत से नग्न व्रतधारी तापस नाना तीर्थों के उपासक मृग चर्म और वल्कलधारी मौनी ये सब दुःखभार से पीड़ित होने के कारण सत्य से वंचित रहते हैं। अतः सिद्ध मत ही श्रेष्ठ और मंगलदायक है।

मू०—हठयोग प्रदीपिकायां चोक्तम्—

केचिदागमजालेन केचिन्निगम संकुलाः।
केचित्तर्केण मुह्यन्ति नैव जानन्ति शाङ्करीम्॥

केचिद्वैखानसाद्यागमोक्ततत्वभ्रमास्तत्र-तत्वाभिमानिनो देहात्मवादिनश्चार्वाकसधर्माणस्ते मनुष्यास्तप्तचक्राद्यङ्किता जीवन्तोऽपि मृतकमिव शरीरं सत्कर्मानर्हं कुर्वाणा देवनिन्दका इति।

केचिच्च, ऋग्यजुरादिवेदाऽऽसक्ताः कर्मज्ञानरताः कर्मणैवायुःपूर्णांकुर्वन्ति।

अथचतत्वंवंचिताःसाधनेऽशक्तास्ते हिकातर्येणप्रारब्ध शरणाभूत्वाशरीरसुखार्थमहंब्रह्मेतिवदन्तस्तिष्ठन्ति।

'तेदवात्मानंचद्धिजानीयात्, इत्यादावुक्तम्। एवंनिगमसंकुला इति।

केचिच्चाऽतर्कैश्वर्येपरमेयस्तुनिशुष्कतर्कानाश्रित्यपंडितंमन्याभवन्तीतिकृत्वाशाङ्करींनजानन्तीति।

'भा० टी०—हठयोग प्रदीपिका में भी कहा है—कुछ आगम और कुछ निगमों के जाल में फसे हुए हैं कुछ लोग तर्क के भ्रम में पड़े रहते हैं वे शङ्कर कथित योग विद्या को नहीं जानते।

कुछ लोग वैखानसों की पुस्तकों में कहे हुए तत्त्वाभासों से भ्रम में पड़े हुए व्यर्थ बातों को तत्त्व समझने वाले चार्वाकों के समान देह को ही आत्मा मानने वाले तप्त चक्रादिकों से चिन्हित होकर जीते हुए ही शरीर को मुर्दे के समान और सत्कर्मों के अयोग्य बनाने वाले सब देवनिन्दक हैं।

कुछ ऋग् यजु आदि वेदों में फसे हुए कर्म करने में ही समस्त आयु को नष्ट कर देते हैं। उनमें कुछ ऐसे भी हैं जो

साधन में अशक्त होने से शरीर सुख के लिये प्रारब्ध की शरण लेते हुए अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकार कहते रहते हैं, यही बात "आत्मानं चेद्विजानीयात्" इत्यादि वाक्यों में कही गई है। इस प्रकार निगम को न समझ कर दुःख उठाते हैं। और कुछ लोग तर्क सामग्री से रहित होने से परब्रह्म में शुष्क तर्कों का सहारा लेकर अपने को बुद्धिमान समझते हुए शाङ्करी विद्या से वंचित रहते हैं।

मू०—सा शाङ्करी स्तूयते

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।

सा पुनःशाङ्करीमुद्रा प्रासाकुलवधूरिव ॥

ऋग् यजुरादयो वेदा धर्मार्थकाममोक्षोपदेष्टारो ब्रह्मचारि गृहस्थवानप्रस्थभिक्षुकाश्रमोपदेष्टारश्च भवन्ति ।

तेचमुख्येवस्तुनि गौणत्वमापादयन्त्यमुख्ये च मुख्यत्वमतोयत्रतादृशाअधिकारिणो बहवोलग्नास्ते चोत्तमपुरुषैरमेयेनीयाद्रव्यस्पृहः प्रवृत्तावेवाऽऽसक्ताभवन्ति ।

शास्त्राणिप्यवैशेषिकादीनितैः श्रममूलकैः कदापिविश्रान्तिर्नास्ति। पुराणानिच नराणामात्मसाधनेषु, अशक्तत्वं प्राय आपादयन्ति यतोबालकानामिव रुचितरासुकथासुलोका नांचित्तवृत्तिंगमयन्ति। तेसर्वेपिसामान्यगणिकाइव-

भवन्ति। तद् यथा गणिकागृहे शृङ्गारप्रधानाएववार्तामुख्याः स्युः, ऐश्वरीवार्तातुगौणी। ताश्चगणिका बह्वयोबहूनांधूर्तानां लम्पटानामुपरिचाऽऽसक्ताभवन्त्यः सत्यवादिनामकामिनां प्रियेश्वरकथानामुपरिनासक्तिंकुर्वन्तीति।

भा०—अब उस शाङ्करी विद्या की स्तुति की जाती है। वेद शास्त्र पुराण ये सब सामान्य गणिकाओं (वेश्याओं) के समान हैं परन्तु शाङ्करी विद्या कुलवधू के समान है। ऋग् यजु आदि वेद, धर्म अर्थ काम तथा ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और भिक्षुक इन आश्रमों का उपदेश करते हैं वे सब मुख्य वस्तु में गौणत्व और गौण वस्तु में मुख्यत्व स्थापित करते हैं इस लिये जहां ऐसे धनाभिलाषी अधिकारी प्रवृत्ति में आसक्त होकर लगे रहते हैं, वे उत्तम पुरुषों से असेवनीय हैं।

वैशेषिकादि शास्त्र भी भ्रममूलक हैं, उनसे विश्राम नहीं मिलता, पुराण तो बालकों के समान अतिरुचिकर कथाओं में लोगों की प्रवृत्ति को बढ़ाते हुए मनुष्यों को आत्म साधन में प्रायः असमर्थ ही बना देते हैं वे सब सामान्य गणिकाओं के समान हैं।

जैसे गणिकाओं के घर में शृङ्गार प्रधान ही बातें मुख्य होती हैं, ईश्वर सम्बन्धी बातें गौण होती हैं क्योंकि वे गणि-

पाएँ धूर्त लम्पट पुरुषों पर ही आसक्त होती हैं परन्तु ईश्वर भक्त सत्यवादी पुरुषों पर नहीं, इसी प्रकार ये सब सकाम पुरुषों के ही प्राप्य हैं, निष्कामों को इनसे कुछ प्रयोजन नहीं।

मू०—किंचइहखलुसंसारेयोगोभोगश्चद्वौपदार्थौस्तः, एतद्द्वयंविना किमपि न स्यात्, सर्वस्याप्येतयोरन्तर्भूतत्वादिति।

तयोर्मध्येयोगेलग्नामहासिद्धा भोगेतु सर्वे संसारिणः, योगस्यफलं मुक्तिर्भोगस्यतु बन्धइति यद्यपि भोगाद्बन्धस्तथापिनानाविलासैर्विषयानन्दं विलुण्ठयति, यदि दुःखमपिभवेत्तर्हिभवतुनामेति। योगिनान्तु पुनःप्रथमतः किंचिच्छ्रमोभवेत्। क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसामित्याद्युक्तत्वात्पश्चात्तु महानानन्दस्तत्र बहवः कथयन्ति किंचिदिति कथं योगेतुक्लेशोऽधिकतर इत्युक्तम्।

भा० टी०—इस संसार में योग और भोग दो पदार्थ हैं, इन दोनों के बिना कुछ नहीं होसकता, क्योंकि इन दोनों में ही सब का अन्तर्भाव हैं। इन में से योग में महासिद्ध और भोग में सब संसारी संलग्न रहते हैं। योग का फल है मुक्ति और भोग का बन्ध तथापि अनेक प्रकार के विलासों से

निरयानन्द मनुष्यों को अपनी ओर खींच ही लेता है भले ही उन को आगे चलकर दुःख ही क्यों न हो। परन्तु अव्यक्त में चित्त लगाने वालों को अधिक क्लेश होता है इत्यादि कथन के अनुसार पहले तो योगियों को कुछ दुःख होता है। परन्तु पीछे महान् आनन्द होता है।

यहां वादी शंका करता है कि पहले कुछ दुःख होता है ऐसा क्यों ? ऊपर के वचन में तो अधिक क्लेश होता है ऐसा यह भाव है।

मू० — तदुपरिमयाकथ्यतेमोगुरुपा ? गुरुहीनानांतेषांकष्टं भवेत्, यदाताटशः पूर्वोक्तः पूर्णोगुरुर्लभ्यते तदामहदपि कष्ट मतिस्वल्पंभवेत्।

तत्रदृष्टान्तः–यथामहाभारयुक्ताशिलायाभवेत्तस्याउत्थापने महस्राणामपि पुरुषाणांकष्टंभवेत्, साचबुद्धिमतापुरुषेणकृत काष्ठादियत्नेनाऽश्रमेणैवोत्थाप्यतेतथागुरुमत्याक्रियया स्वल्पेनापि कष्टेन महतीसिद्धिर्भवति यदिचमहत्कष्टमपिभवे त्तदाकष्टोत्तरंतुमहानानन्दोभवत्येव यस्त्वखंडैकनाथरूपोभ वतिनक्षत्रिप्णवायथीश्वरो भवतिनानारूपो भवति। ब्रह्मादयः सर्वेतस्यपूजांकुर्वन्ति । योगारूढोनानाभोगान्भुनक्ति नतु-

तैर्लिप्यते । योगंविनाभोगोरोगएवस्यात् । भोग्यपियोगीसंसारीवद्दश्यतेनतुसंसारीवद्वन्धनंप्राप्नोति ।

इसका उत्तर यह है कि हे पुरुषो ! जो गुरुहीन होते हैं उन्हें अवश्य ही बड़ा भारी कष्ट होता है । यदि पूर्वोक्त प्रकार का गुरु मिल जाय तो यह महान कष्ट कुछ भी नहीं रहता। जैसे बहुत भारी शिला को यदि बिना टाल्ह और बिना गोल लकड़ियों की सहायता से उठाया जाय तो सहस्रों पुरुषों को भी बड़ा भारी कष्ट होगा और वही शिला किसी बुद्धिमान् पुरुष की बताई विधि के अनुसार टाल्ह आदि की सहायता से सहज में ही उठाई जा सकती है, इसी प्रकार गुरुदेव की बताई युक्तो से थोड़े से ही कष्ट के द्वारा बड़ी भारी सिद्धि प्राप्त हो जाती है । और यदि महान कष्ट होना भी मान लिया जाय तो भी कष्ट के बाद तो अवश्य ही बड़ा भारी आनन्द प्राप्त होजाता है जो गुरु की कृपा से अखण्ड परनाथ पदवी को प्राप्त हो जाता है वह तो ब्रह्मा विष्णु आदि देवों का भी अधीश्वर हो जाता है, और नाना रूपों से वर्तमान रहता है । ब्रह्मा आदि सब देवता उसकी पूजा करते हैं।

योगारूढ़ योगी अनेक प्रकार के भोगों को भोगता हुआ

भी उनसे लिप्त नहीं होता। योग के बिना जो भोगभोगता है वह रोगी हो जाता है। जो योगपूर्वक भोग करता है वह यद्यपि संसारीसा दिखाई देता है पर संसारी के समान बन्धन में नहीं पडता।

मू०—ननु केचिच्छास्त्रिणः कर्माद्युपासनं साधनं कथयन्ति तदा मया कथ्यंते तेषां कथनं मया न निवार्यते तदेव कुर्वन्तु नाम परन्तु तत्करणे फलं किमिति। कथं कर्मणामवधिर्मीमांसकास्तेतु पठनपाठनाचरणं पठनपाठनदोषानिवृत्त्यर्थामिष्टस्मरणं कुर्वन्ति। यस्य शास्त्रस्य पठने पाठने चापि दोषस्तस्य सेवनेन किं भविष्यतीति पुनर्यः स्वामिनं भजेत् मस्वतंत्रो भवेत् यस्च प्रसन्नः स्वयमेव यदिच्छति तद्ददाति मंत्रिभ्यः। अन्यस्यतु पुरुषस्न कस्याप्यपेक्षां करोति। अयं देहः कर्मरचितः कर्माणिच सर्वाणि निगुणानां सन्ति। गुणाश्च माया या एवंच यदि अनेन प्राणिना प्रारब्धं कर्माभिमतं तदा मायाभिमता, तदभिमाने चतत्रैव समये ब्रह्मतत्त्वात्पृथग्भूतः। ततश्च पूर्वं पश्चादपि गुणलेशोऽपि घृतएव सचबाधक एव।

तस्मात्प्रारब्धकर्मनिर्मूलकरणमवधूतानामेव कर्म। वेदा-

तैर्लिप्यते । योगंविनाभोगीरोगेवस्यात् । भोगयपियोगीसंसारीवदृश्यतेनतुसंसारीबन्धनंप्राप्नोति ।

इसका उत्तर यह है कि हे पुरुषो ? जो गुरुहीन होते हैं उन्हें अवश्य ही बड़ा भारी कष्ट होता है । यदि पूर्वोक्त प्रकार का गुरु मिल जाय तो वह महान कष्ट कुछ भी नहीं रहता। जैसे बहुत भारी शिला को यदि बिना ढालू और बिना गोल लकड़ियों की सहायता से उठाया जाय तो सहस्रों पुरुषों को भी बड़ा भारी कष्ट होगा और वही शिला किसी बुद्धिमान् पुरुष की बताई विधि के अनुसार ढालू आदि की सहायता से सहज में ही उठाई जा सकती है, इसी प्रकार गुरुदेव की बताई युक्तियों से थोड़े से ही कष्ट के द्वारा बड़ी भारी सिद्धि प्राप्त हो जाती है । और यदि महान् कष्ट होना भी मान लिया जाय तो भी कष्ट के बाद तो अवश्य ही बड़ा भारी आनन्द प्राप्त होजाता है जो गुरु की कृपा से अखण्ड परमार्थ पदवी को प्राप्त हो जाता है वह तो ब्रह्मा विष्णु आदि देवों का भी अधीश्वर हो जाता है और नाना रूपों से वर्तमान रहता है । ब्रह्मा आदि सब देवता उसकी पूजा करते हैं ।

योगारूढ योगी अनेक प्रकार के भोगों को भोगता हुआ

भी उनसे लिप्त नहीं होता। योग के बिना जो भोगभोगता है वह रोगी हो जाता है। जो योगपूर्वक भोग करता है वह यद्यपि संसारीसा दिखाई देता है पर संसारी के समान बन्धन में नहीं पड़ता।

मू०—ननु केचिच्छ्रुतिशिरःकर्माद्युपासनंसाधनंकथयन्ति तदामयाकथ्यतंतेषांकथनंमयानानिवार्यते वदेवकुर्वन्तुनाम परन्तु तत्करणे फलंकिमिति। कथंकर्मणामवधिर्मीमांसका-स्तेतु पठनपाठनोत्तरपठनपाठनदोषानिवृत्त्यर्थामिष्टस्मरणंकु-र्वन्ति। यस्यशास्त्रस्य पठने पाठने चापिदोषस्तस्य सेवनेन किंभविष्यतीतिपुनर्यस्तामिनंभजेत्मस्वतंत्रोभवेत्यश्चप्रसन्नः स्वयमेव यदिच्छतितद्ददाति मंत्रिभ्यः। अन्यस्यतुपुरुषस्य-न कस्याप्यपेक्षांकरोति। अयंदेहःकर्मरचितःकर्माणिचसर्वाणि त्रिगुणानांसन्ति। गुणाश्चमायायाएवंच यदिज्ञानेनप्राणिना प्रारब्धंकर्माभिमतंतदामायाभिमता, तदभिमानेचतत्रैवसमये ब्रह्मतत्त्वात्पृथग्भूतः। ततश्चपूर्वंपश्चादपिगुणलेशोविद्यतएव सचबाधक एव।

तस्मात्प्रारब्धकर्मनिर्मूलकरणमवधूतानामेवकर्म। वेदा-

र्त्तोचित्तशुद्ध्यर्थं कर्माभिमत्य तदनन्तरं ज्ञानं साधनमित्युपदिश ति। यतःसोपि सापेक्षएव। मीमांसकोमंत्रीवराजमापेक्षो वेदान्तीराजवन्मंत्रिसापेक्षः, परन्तु सापेक्षतोभयोरेवास्ति। कस्याप्यपेक्षामकुर्वन् योग आवश्यकः सर्वेषांकर्तव्यो यःस सर्वदास्वतन्त्रोऽस्ति। मीमांसको द्वैतमभिमन्यतेवेदान्तीत्व द्वैतमभिमन्यते। तदुपरिवयंवदामः। एतदुभयमपि प्रकृति विकारः प्रकृतिविकारश्चसर्वदाचंचलोनास्तिकदापि स्थिरः। अक्षतु सर्वदास्थिरमेवास्ति।

तत्रद्वैतवादिनोनिश्चलंनास्तीतिवदन्ति। तथैवाऽद्वैतमभिन्यतो निश्चलं नास्तीतिकथं। यदिब्रह्माद्वैतमस्ति तर्हि द्वैतं कुत आगतं तदा मायाकल्पितमितिवदेयुस्तर्हिवानूवदन्तोवयमवा चोऽक्रियाँश्च कर्म तत् किमितिचेदुच्यते। अद्वैतंतुनिष्क्रिया- दित्याग्यस्ति। यतः कस्यापिवस्तुनोभोगोपि युष्माभिर्नकर्त- व्य इत्याद्यनेकविधिभिरद्वैत खण्डनं करिष्यामः। महासिद्धै रुक्तं यद्द्वैताऽद्वैताविवर्जितंपदं निश्चलंदृश्यते तदेवमत्यामि- त्यभ्युपगमिष्यामः।

के लिये स्वतन्त्रता से करने योग्य है। मीमांसक द्वैत को मानता है परन्तु वेदान्ती अद्वैत को। इस पर हम कहते हैं, ये दोनों ही प्रकृति के विकार हैं प्रकृति के विकार सदा चञ्चल होते हैं कभी स्थिर नहीं होते। परन्तु ब्रह्म सदा स्थिर है। यहां द्वैत वादी निश्चल नहीं है यह कहते हैं। इसी तरह अद्वैत मानने वालों के मत में निश्चल नहीं है। यह कैसे कहा जा सकता है, यदि ब्रह्म अद्वैत है तो द्वैत कहां से आया यदि ये कहें कि द्वैत माया कल्पित है तो हम उन के वाणी और कर्म से रहित करते हुए कहेंगे कि तुम कर्म किसे कहते हो ? क्योंकि अद्वैत तो निष्क्रियादि त्यागी है, इस लिये तुम्हें किसी वस्तु का भी भोग नहीं करना चाहिये, इस प्रकार अनेक प्रकार से अद्वैत का खंडन करेंगे। महा सिद्धों ने कहा है कि द्वैत अद्वैत से विवर्जित जो निश्चल पद शास्त्रों में दिखाई देता है, वही सत्य है यह स्वीकार करेंगे।

मू०—तत्तु उग्रभैरवनामैककापालिकरूपतः श्री भैरवेण शङ्कराचार्याद्युपरिकृतम् । कथं, चतुर्भिः शिष्यैः संयुक्तः शङ्कराचार्यो नदीतीरे स्थितस्तस्मिन्स्थले कापालिकः समुपागत्योक्तवान् । भो ? त्वंतु संन्यासी भिक्षारि

पक्षेतुल्यः सुखदुःखादिद्वन्द्वपदार्थरहितोऽसि । अस्माकं चायमभिप्रायो वर्तते तवशिरउच्छिद्यपश्चात् श्रीभैरवार्पणं करिष्यामि तदाममप्रतिज्ञा पूर्णा भविष्यति । यतोभवान् शिरोददात्विति। तदा शंकराचार्येणालोचतं नैवंकरिष्यते तदात्वद्वैत हानिः शत्रु मित्र पक्षे तुल्यत्वं न स्यात्, कृते च पराजयो भवेदेतदुद्वयविचारेऽपि पराजयएवेतिमत्वा न किमपितेनोक्तं शैथिल्यंजातं तदा पद्मपादाचार्येण नृसिंह स्मरणं कृत शुभ्र भैरवोपरि नृसिंहस्य प्रहारः कृतो यस्तु महा सिद्धस्तच्छरीरं त्यक्त्वा दृश्यमेव च शरीरं गृहीत्वा सम्मुखे मेस्थितो भूत्वा प्रसन्न वदनो मेघगम्भीर गिरयोवाच—भो ! अद्वैतपराजय इति । शत्रुमित्रपक्षे यद्वदस्तत्कुत्रगतम्, मदीयंतु यथा मल्लो नियुद्धेस्वयमेवानिपत्याऽन्यस्यपातनं करोति तथा स्वशरीरं त्यक्त्वा परसिद्धान्तहानिः कृतैवेति चरितम्. पुनः साम्प्रतं त्वदीय हानिः, अतः परमपि क्रियते उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युद्धं कुर्वित्याह । तदा प्रारब्धकर्माचरणं वर्तते न्यासिनांमते यतः क्रियाकरणमिति सिद्धान्तो नास्ती तिकृत्वायुद्धेऽशक्तो जातः। कापालिकोपदेशेनाक्रियैवस्वासि द्धान्तेऽद्वैतस्थितिवत् स्थितः, तदा कापालिकेन योगमाया

निर्मिता तया चचतुःशिष्यसंयुक्तस्याऽऽचार्यस्य मस्तकं छिन्नं पश्चाच्च स संजीवितः कृतस्तर्हि विरागोजातः। पश्चिमायां दिशिगतः शक्तिस्मरणं कृतवान् पूर्ववार्ता। शङ्कराचार्यस्योत्पत्तिर्दाक्षिणस्यां दिशि। तत्रतु कर्म सेवनमेवकृतं विष्णु पासनादि। यदा चित्तशान्तिर्नजाता तद पृथिवीप्रदक्षिण करणार्थं प्रयाणंकृतम्। पूर्वस्यां च दिशायामागत्य तत्र तु वैद्यनाथाख्यस्थलंगत्वा पूजांचकार, तदेश्वरेणनाङ्गीकृता-पूजा। किमर्थंत्वयाविष्णुभक्तिरेव कृता अहंतु साक्षादीश्वरः सतु विस्मृतइति। तदा शङ्करेणाऽपराधक्षमानामकंस्तोत्रंकृतं, पुनरपिशिवभक्तिर्विशेषेण कृता तथापिचित्तशान्तिर्नजाता। पश्चाच्च पश्चिमां दिशंगतस्तत्र शक्तिरहितोजातः। शक्तेर्दृष्टुं सान्तोदृष्टः।

तदा च शक्त्योक्तं शिवएव सर्वंकरिष्यतीति। तेनभया कुलोजातः सौन्दर्यलहरीनामकं स्तोत्रंकृत्वा शाक्तोजातस्तथापि पूर्णशान्तिर्नजाता। ततउत्तरांदिशंगतः। सातुमहा सिद्धसमुदायेनसर्वापिदिग्व्याप्ता। यत्र गतस्तत्रसर्वैरुपहासः कृतः। तत्र श्रीतारानाथेनोक्तं तीर्थाटनमेवकरिष्यतेवा किम

ष्यात्मसाधनमपिकरिष्यतेतदा शङ्करेणोक्तं भवद्भिर्यत्कथ्यते तन्मयाक्रियते। तदा महासिद्धेन योगोपदेशः कृतः। तेन सर्वबाधानिवृत्तात्मा च प्रसन्नो जातस्तदा वज्रसूचिकोपानिपत् कृता। सातुसर्वापिनाथमार्गानुसारिण्येव। तत्रश्रीसिद्धासिद्धान्तपद्धतिप्रमाणंदत्तम्—

'वेदान्ती बहुतर्ककर्कशमतिरित्यादि तस्मात् सिद्धमतं स्वभावसमयंधीरः परं संश्रयेदित्यन्तादीनि पद्यानि इति।

भा०—उसी द्वैताद्वैत वर्जित निश्चल पद का उग्र भैरव नामक एक कापालिक के रूप में श्री भैरव ने श्री शंकराचार्य के ऊपर प्रदन किया था उसका नीचे वर्णन करते हैं चार शिष्यों के साथ एक समय शंकराचार्य एक नदी के तीर पर बैठे थे वहां एक कापालिक ने आ कर कहा कि हे शंकराचार्य ! आप तो संन्यासी हो शत्रु मित्र पक्ष में एक समान और सुख दुःखादि द्वन्द्व पदार्थों से रहित हो। हमारा अभिप्राय यह है कि तुम्हारा सिर काट कर श्री भैरव की भेंट करें तब मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो। इसलिये आप अपना शिर दे दें। तब शङ्कराचार्य ने सोचा यदि कापालिक का वचन नहीं किया गया तो अद्वैत सिद्धान्त की हानि होगी और शत्रु मित्र पक्ष में समानता न होगी।

और यदि इन का यत्न किया गया तो पराजय होगी ये दोनों बातें विचार कर उन्होंने पराजय को ही अच्छा समझ कर कुछ न कहा इस मौनता से शंकराचार्य के मत में शिथिलता आगई। तब पद्मपादाचार्य ने नृसिंह का स्मरण किया नृसिंह ने प्रगट हो उस भैरव के ऊपर प्रहार किया परन्तु वह महासिद्ध था उस शरीर को छोड़ कर दूसरे दृश्य शरीर को धारण कर प्रसन्न मुख हो सामने आकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा हे शङ्कराचार्य ! अद्वैत का पराजय होगया, तुम अपने आपको शत्रु मित्र पक्ष में समान कहते थे यह बात कहाँ गई, मैंने तो जैसे पहलवान नियुद्धनाम के दाव में अपने को गिरा कर दूसरे को गिराता है उसी प्रकार अपने शरीर के मूल्य पर तुम्हारे सिद्धान्त की हानि की है। इस लिये मेरा कार्य उचित है। तुम्हारी हानि तो मैं आगे भी करूंगा, अतः उठो और युद्ध करो। तब शंकराचार्य ने यह मान कर कि प्रारब्ध कर्मों का आवरण हम पर है वास्तव में क्रिया करना सन्यासियों का सिद्धान्त नहीं है युद्ध में असमर्थता प्रकट की। अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार कापालिक के कहने पर भी क्रिया न करना हमारा सिद्धान्त है। यह जब उसने स्थिर किया तब कापालिक ने योग माया उत्पन्न की, उसने चारों शिष्यों के सहित

आचार्य का मस्तक काट लिया, और फिर उसको जीवित कर दिया। तब शङ्कराचार्य को वैराग्य उत्पन्न हो गया, फिर पश्चिम दिशा में जाकर शक्ति का स्मरण किया, (यह पहली बात है) शंकराचार्य की उत्पत्ति दक्षिण में हुई थी वहां उन्होंने विष्णु पूजा आदि कर्म ही किये, परन्तु जब उससे चित्त को शान्ति न मिली तब पृथिवी प्रदक्षिणा के लिये यात्रा की और पूर्व दिशा में आकर वहां वैद्यनाथ नामक स्थान पर पूजा की वह पूजा ईश्वर ने स्वीकृत नहीं की। उन्हों ने कहा कि तुमने विष्णु की भक्ति की है, मैं जो साक्षात् ईश्वर हूँ तुमने मुझे क्यों भुला दिया तब शंकर ने अपराध क्षमापन नामक स्तोत्र बनाया और फिर विशेष रूप से शिव भक्ति की परन्तु फिर भी चित्त में शान्ति नहीं हुई, फिर पश्चिम दिशा में गया, वहां शक्ति रहित हो गया । फिर शक्ति का वृत्तान्त देखा तब शक्ति ने कहा कि शिव ही सब कुछ करेगा, फिर शक्ति से भयभीत होकर सौन्दर्य लहरी नामक स्तोत्र रचा और शाक्त बन गया। तब भी पूर्ण शान्ति नहीं हुई । फिर उत्तर दिशा को गया। वहां जाकर देखा तो वह दिशा महासिद्धों से भरपूर थी जहां गया वहीं सिद्धों ने उसका उपहास किया । वहां श्री तारानाथ ने कहा-तीर्थाटन ही करते रहोगे, या कुछ आत्मा साधन भी करोगे। तब शंकर ने कहा कि जो आप कहेंगे

वही करूंगा। तब महासिद्ध ने योग का उपदेश किया, उस उपदेश से शंकर का आत्मा सब बाधाओं से निवृत्त और प्रसन्न हो गया। तब उन्हों ने वज्र सूचिकोपनिषद् का निर्माण किया, यह उपनिषद् सर्वथा नाथमत के अनुसार है, यहां उन्होंने 'वेदान्ती बहुतर्क कर्कशमतिः' इत्यादि सिद्ध सिद्धान्त पद्धति का प्रमाण दिया।

मू० — यथामंडन मिश्रः सुरेश्वराचार्यो जातस्तथाऽयमपि सिद्धोभूत्वा सिद्धान्तविन्दुप्रभृतिग्रन्थांश्चकार। सिद्धान्तस्तु सिद्धस्य तात्पर्यार्थएव नतुवादिप्रतिवादिभिर्निर्णीतोऽर्थः सिद्धान्तः। एतन्मध्ये—'नचैकंतदन्यदाद्वितीयं कुतःस्यात्, तत्तुद्वैताद्वैत विलक्षणत्वेनैवसिद्धान्तो जातः। न्यासिनान्त्वद्वैतमेवभवतीत्यपारीविज्ञेया। अन्यैःसिद्धान्तः कथ्यते। तेषां मुख्येसिद्धान्तशब्दप्रवृत्तिर्महासिद्धानांमुद्रागतोऽन्यमुखे सिद्धान्तःकेवलं रूढित एव। सिद्धानां मते रूढियौगिकं द्वयमपि वर्तते। तर्हि सिद्धान्तःसिद्धस्यैव तात्पर्यम्। एतत्कारणात् सिद्धस्यैव सिद्धान्तोनत्वन्यस्य। अतएव शंकरेण सिद्धान्तविन्दुः कृतः। प्रथमं तु दक्षिणदेशे कर्मसेवने विष्णू

पासना कृता पश्चात्पूर्वदेशे शिवदर्शने संन्यासो गृहीतः। पश्चिमे च शक्तिदर्शने शाक्तो जातः। तत्र तद्विषयकं प्रपंच सारादि ग्रन्थंकृतवान्।

पश्चादुत्तर देशे सिद्धोपदेशेनाऽवधूताऽवस्थागृहीता। तेनमयंश्रेयो जातमिति।

भा०—जैसे मण्डन मिश्र ने सुरेश्वराचार्य होकर बहुत से ग्रंथ बनाए उसी तरह इन्होंने भी सिद्ध होकर सिद्धान्त विन्दुरत्यादि ग्रंथों का निर्माण किया। यहां सिद्धान्त शब्द सिद्धों के तात्पर्य का बोधक है न कि वादी प्रतिवादी द्वारा निर्णीत अर्थ का उस सिद्धान्त विन्दु में लिखा है कि एक नहीं है तो उसके अतिरिक्त दूसरा कहां से हो सकता है यह सिद्धान्त तो द्वैताद्वैत से विलक्षण ढंग का माना गया है। और संन्यासियों के मत में तो अद्वैत ही सिद्धान्त है। यह रीति जाननी चाहिये।

उन योगियों के मत से मुख्य विषय में जो उन्हें आनन्द से प्राप्त हुआ है सिद्धान्त शब्द की प्रवृत्ति होती है, अन्य लोगों के मत में तो सिद्धान्त की प्रवृत्ति सार्थक नहीं। किन्तु रूढ़ि से है। और सिद्धों के मत में सिद्धान्त रूढ़ि और यौगिक

दोनों प्रकार का है । इसलिए ये सिद्धि के तात्पर्य को ही सिद्धान्त कहते हैं। अन्य किसी के तात्पर्य को नहीं, इसी से शङ्कराचार्य ने सिद्धान्त बिन्दु की रचना की है, पहले दक्षिण में उन्होंने कर्मों का सेवन और विष्णु की उपासना की फिर पूर्व देश में शिव जी का दर्शन करके सन्यास ग्रहण किया, पश्चिम में शक्ति का दर्शन करके शाक्त हुए, वहां उन्होंने शाक्त सिद्धान्त के प्रपञ्चसार नामक ग्रन्थ बनाया, फिर उत्तराखण्ड में सिद्धों के उपदेश से अवधूतावस्था प्राप्त की। उसी से उनको समस्त कल्याणों की प्राप्ति हुई।

मू०—ननुकापालिकप्रसंगकथनादेतेषां कापालिक मतमिति कैश्चिज्ज्ञायतइति, तत्तुनास्त्येव, अस्माकं मतन्त्व वधूतमेव। परन्तु कापालिकमपि मतं नाथेनैव प्रकटीकृतम्। एतन्मार्गस्य प्रकटकर्ता नाथएव।

तदुक्तंशावरतन्त्रे—
आदिनाथो ह्यनादिश्चकालश्चैवातिकालकः ।
करालो विकरालश्च महाकालश्च सप्तमः ॥
काल भैरवनाथश्च वटुकस्तदनन्तरम् ।

भूतनाथोवीर नाथः श्रीकंठो द्वादशोमतः ॥

एते कापालिकाः प्रोक्ता वीरतुम्बीमहाफलैः ।
गुरूणां सूर्यसंख्याचतानिहवाच्मिसंशृणु ॥
नागार्जुनो जड़भरतो हरिश्चन्द्रस्तृतीयकः ।
सत्यनाथो भीमनाथो गोरक्षश्चर्पटस्तथा ॥
अवद्यश्चैव वैराग्यः कन्थाधारी जलन्धरः ।
मार्गप्रवर्तका ह्येतेतद्वच्चमलयार्जुनः ॥

भा०—यहां यह शंका होसकती है कि यहां कापालिकों का बहुत कथन किया गया है, इससे ज्ञात पड़ता है कि योगियों का कापालिक मत है, परन्तु ऐसा कदापि नहीं हो सकता। हमारा मत तो अवधूत ही है। हां कापालिक मत को प्रकट नाथ जी ने ही किया है। जैसा कि शावर तंत्र में वर्णन किया है आदिनाथ तथा अनादिनाथ,काल, अतिकालक,कराल,विकराल, और सातवां महाकाल, काल भैरव, नाथ, और इसके बाद बटुक, भूतनाथ, वीरनाथ, और बारहवां श्रीकंठ, ये वीर तुम्बी महाफलों करके कापालिक कहे गये हैं। गुरुओं की संख्या भी बारह ही है। उन्हें भी कहता हूं सुनो नागार्जुन, जड़भरत, तीसरा हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्ष

और चर्पट, अवद्य, वैराग्य, कंथा धारी, जलंधर मलयार्जुन ये सब मार्गप्रवर्तक हैं।

मू०—पुनः शैवः शाक्तोपि मार्गस्तन्त्राऽनुसारी। तस्याप्युपदेष्टानाथ एव। नाथैर्नवराचितानि तंत्राणि। तदुक्तं षोडशनित्या तन्त्रे—

कादि संज्ञाभेद् रूपा सा शक्तिः सर्वसिद्धये।
तंत्रं मदुक्तं भुवने नवनाथैरकल्पयत् ॥
तया ते भुवनेतंत्र कल्पेकल्पे विजृम्भते।
अवसानेतु कल्पानां सा तैः सार्धं व्रजेच्च माम् ॥
नामपर्यायतो व्यासं कालाचारमिति द्वयम्।
प्रसिद्धं वाहतो यच्च श्रीशिनामानिसाधके ॥
नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरु रूपिणे।
विद्याऽवतार संसिद्ध्य स्वीकृताऽनेकविग्रह ? ॥
नवाय नवरूपाय परमार्थैकरूपिणे।
सर्वज्ञान तमोभेदभानवे चिद्घनायते ॥
स्वतंत्राय दयाशक्तिविग्रहाय रसात्मने।
परतंत्रायसक्तानां भव्याय भव्यरूपिणे ॥

पुनःयोगस्तु कस्यापि सापेक्षोनास्ति। परन्तु तान्त्रिका णामयमेव सिद्धान्तो वर्तते यत्रोत्तरावस्थाऽवधूतएव।

भा० टी०—शैव और, शाक्त मार्ग भी तंत्रानुसारी हैं। उन मार्गों का उपदेश करने वाला भी नाथ ही है। तंत्र ग्रन्थ भी नाथ जी ने ही रचे हैं। जैसा कि षोडश नित्या तन्त्र में कहा है। कादि संज्ञा रूपा ज्ञानी है। यही शक्ति सब सिद्धियों की प्राप्ति के लिये होती है मेरे कहे हुए तन्त्र को नवनाथों द्वारा उस शक्ति ने प्रकाशित किया उसी शक्ति से नवनाथों द्वारा प्रत्येक कल्प में तंत्र प्रकाशित होता है। और कल्पान्त में यह शक्ति उन्हीं के साथ मुझे प्राप्त होती है। समानार्थ नामों से व्यास और काल से प्राप्त, दो ये और बाहर से प्रसिद्ध ये तीन नाम साधक में हैं। हे भगवन् नाथ आप शिव रूप हैं और गुरु रूप हैं।

आपको नमस्कार है, विद्या के प्रकाश को सिद्धि के लिये आपने नाना प्रकार के रूपों को धारण किया है। आप नव हैं नवरूप हैं परन्तु वास्तव में आपका रूप एक ही है। समस्त अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले चिद् रूप आपके लिये नमस्कार है।

आप स्वतंत्र दयाशक्ति रूप और रसात्मा हैं। आप अपने भक्तों के आधीन हैं, और परममनोहररूप धारी हैं योगतो किसी की अपेक्षा नहीं रखता। तान्त्रिकों का यह सिद्धान्त है

मू०—कापालिको मार्गः किमर्थं प्रकटीकृत इत्यपेक्षायामाह। विष्णोश्चतुर्विंशति संख्यका अवतारास्तेच कार्यान्तेमदोन्मत्ताजाताः। कथम्? यथाऽन्ये तिर्यग् योनयो जन्तवः क्रीड़ाः कुर्वन्ति तथा वराहो नृसिंहश्चेत्यादयो भूदारणजन्यभय दानादिकरणे प्रवृत्ताः। पुरग्रामा दिताड़नं केषांचित् समुद्रपातोऽपि। तत्रापि कृष्णेन व्यभिचारिभावो विशेषेणधृतः। परशुरामेणैकक्षत्रिय दोषेऽनेकेषां क्षत्रियाणां नाशः कृतः, इत्यादि विरुद्धाचारोपरिनाथेन कोपं कृत्वा चतुर्विंशत्यवतारोपरि चतुर्विंशति कापालिकरूपाणिधृत्वा चतुर्विंशत्यवतारैः सह समरं कृतम्। तत्र सर्वेषामवताराणां कपालानिछिन्नानि कृतानि, स्वकरैस्तानि धृतानि तेन कापालिका जाताः। पुनस्तेसर्वेकपालच्छेदान्मदर्शीना जाताः, तदा वरं दत्त्वा कपालानि तच्छरीरे धृतानि तेनजीवितावभूवुरीति।

भा०—अब आगे कापालिक मार्ग क्यों प्रकट किया इसका उत्तर देते हैं—विष्णु के चौबीस अवतार हुए वे अपने २ कार्य के अन्त में मदोन्मत्त हो गए। कैसे? जैसे अन्य जीव जन्तु क्रीडा करते हैं वैसे ही वराह नृसिंह आदि ने पृथिवी

फाड़ना, जंगली जीवों को भयभीत करना, इत्यादि कार्यों में संलग्न हो गए। नगर और ग्रामों को पीड़ित करते थे, यदुनों को समुद्र में भी गिरा देते थे। कृष्ण ने तो बहुत ही व्यभिचार फैलाया, तथा परशुराम ने एक क्षत्रिय के दोष से सभी क्षत्रियों को नष्ट करना आरम्भ कर दिया, इन विरुद्ध आचरणों से श्रीनाथ जी ने क्रुद्ध होकर २४ अवतारों पर चौबीस कापालिक रूप[1] धारण करके उनके साथ युद्ध किया और उनके सिर काट कर हाथ में लिये इसीलिए कापालिक कहाए। फिर वे सब सिर कट जाने से मदहीन होगए तब फिर उन्हीं के कपाल उनके ऊपर धर कर उन्हें जीवित कर दिया।

मू०—कानिचिच्छास्त्राणिमोक्षरक्षकाणि कानिचिद्व्यवहाररक्षकाणि। तत्रमोक्षरक्षकाणियोगशास्त्राणिव्यवहाररक्षकाणिश्रुतिस्मृत्यादीनि। मुमुक्षवः पुरुषाः कोटीनांमध्येद्वित्राएवभवन्ति, व्यवहारिणस्तुकोटिकोटिरेव। अतः कारणाद्व्यवहारार्थविधिवाक्यशास्त्राणि बहूनिसन्ति। कथं? व्यवहारिणांबाहुल्यात्। योगशास्त्रंतुस्वल्पम्। कथं? मुमुक्षुपुरुषाणामल्पत्वात्। वेदादिशास्त्राणामपि योगो वर्ततएव। सर्वेषां च तात्पर्यंयोगएवास्ति परन्त्वेतद्रीत्या,

१, यहांपरशिरच्छेदनमेंतात्पर्य नहीं किन्तु हास्य रसहै।

यथा समुद्रे रत्नानिशंखाः पाषाणखण्डानिजलंजलजन्तव-श्चेत्याद्यनेक वस्तूनि सन्ति। तथा वेदादिशास्त्रेष्वपियोगा-दीनिसन्ति। समुद्रेचेतरवस्तुसुलभंरत्नन्तु श्रमेणलभ्यते। एवंवेदादिशास्त्रेष्वनहारादि सुलभम्, योगस्तुभूरिश्रमेण लभ्यते। योगशास्त्रेतुयोग एव लभ्यते नान्यदस्ति किञ्चि-दसारं यथारत्नखनौरत्नमेवेति। सच योगोगुरुकृपयाल्पश्र-मेणैवप्राप्तोभवेत्। अतोऽन्यत्सर्वंपरित्यज्ययोगएवसेवनीय इति।

भा०—कुछ शास्त्रमात्र रक्षक और कुछ व्यवहार रक्षक हैं, उनमें योग शास्त्र मात्र रक्षक हैं, और श्रुतिस्मृति आदि व्यवहार रक्षक हैं। मुमुक्षु पुरुष करोड़ों में दो तीन ही होते हैं परन्तु व्यवहार रक्षक सभी होते हैं अतः व्यवहार रक्षा के लिये विधि वाक्य शास्त्र बहुत से हैं, क्योंकि संसार में व्यवहारी लोग ही अधिक हैं। योग शास्त्र अत्यन्त सूक्ष्म है, क्योंकि मुमुक्षु पुरुष तो होते ही बहुत थोड़े हैं। वेदादि शास्त्रों में भी योग है अवश्य, क्योंकि अन्त में सब का तात्पर्य योग में ही है। परन्तु रीति में भेद है, जैसे समुद्र में रत्न शंख पत्थरों के टुकड़े जल और जल जन्तु इत्यादि बहुत सी वस्तुएं होती हैं। इसी

प्रकार वेदादि शास्त्रों में भी योग आदि सभी वस्तुएं हैं, समुद्र में और चीजें सुगमता से मिल जाती हैं, परन्तु रत्न कठिनता से मिलते हैं, ऐसे ही वेदादि शास्त्रों में भी व्यवहार आदि सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु योग बड़े परिश्रम से प्राप्त होता है, योग शास्त्र में तो रत्नों की खान में रत्नों के समान योग ही योग है, अन्य असार वस्तुएं नहीं हैं। यह योग गुरु की कृपा हो जाय तो थोड़े ही परिश्रम से प्राप्त हो जाता है। इसलिये सब कुछ छोड़ कर योग का ही सेवन करना चाहिये।

मू०—पृथ्वीकर्त्रीमहादेवी नाथाः शास्त्रस्यबंधका।
ब्रह्मतत्त्वविदित्याद्याः शरभाद्यास्तुरचकाः॥

ननुश्लोकेतुपृथ्वीकर्त्रीत्युक्तंभवद्भिस्तुनाथः कर्तेत्युच्यतेतत्कथमितिचेदुच्यते। नाथाः शास्त्रस्यबंधकाइत्यनेन शास्त्रप्रबन्धकत्वंतूक्तमेव, पुनः कर्तृत्वंतुपृथिव्या अपि नाथ स्वरूपत्वेनैव, चतुरशीतिसिद्धगणनायामादिकुमारीनामकसिद्धत्वेनोक्तत्वात्। सिद्धाश्चरूपत्वेनाऽप्रसिद्धाएवेतितथैव यत्साधनंकर्तव्यं यत्नेनैव साधनेनसिद्धिर्भवेदित्येवंतुयोगएवपरंसाधनमित्याशयेनोक्तं—

योगमार्गात्परोमार्गोनास्तिनास्तिश्रुतौस्मृतावपि।

तदयन्तश्च श्रेष्ठा उक्ता इति सर्वत्र लभ्यते । एवं चर्योगिन श्रेष्ठास्तेषां श्रेष्ठ्यंगम्यत्वेनाप्याह पद्मपुराणे

मर्यादांस्थापयामास यथास्थानं यथागुणं ।
वर्णानामाश्रमाणांच धर्मोधर्मभृतांवर ॥
लोकाश्रमर्वं वर्णानांसम्यग्धर्मानुपालिनाम् ।
प्राजापत्यंब्राह्मणानांस्मृतंस्थानंतुपार्थिव ॥
स्थानमैन्द्रंचक्षत्रियाणांयतीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतंतपान्तुयत्स्थानंतदेवगुरुवासिनाम् ॥
सप्तर्षीणाञ्चयत्स्थानं स्मृतंतद्वैवनौकसाम् ।
प्राजापत्यंगृहस्थानांन्यासिनां ब्रह्मसंज्ञितम् ॥
योगिनाममृतंस्थानं ब्रह्मणः परमंपदम् ।
एकान्तिनः सदोद्युक्ताध्यायिनोयोगिनोहिये ॥
तेषांतत्परमस्थानं यत्रपश्यन्तिसूरयः ।
गत्वागत्वानिवर्तन्तेचन्द्रादित्यादयो ग्रहाः ॥
अद्यापिनर्निवर्तन्तेप्राणायाम परायणाः ।

गीतायांच—

वेदेपुयज्ञेपुतपस्सुचैवदानेपुयत्पुण्यफलंप्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगीपरंस्थानमुपैतिचाद्यम् ॥

भा०—महादेवी पृथिवी कर्त्री है, नाथ शास्त्रके निर्माणक हैं। ब्रह्मानन्दविद् और शरभ आदि सिद्ध रक्षक हैं। यहां शंका होती है कि श्लोक में पृथिवी को कर्त्री बतलाया है आप लोग नाथ को कर्ता कहते हैं यह कैसे हो सकता है उत्तर नाथ शास्त्र के प्रबन्धक हैं, इस से नाथों को शास्त्र का प्रबन्धक तो कहाही है। पृथिवी का कर्तृत्व भी नाथ रूप से ही है। क्योंकि चौरासी सिद्धों की गणना में आदि कुमारी नाम से पृथिवी को भी एक सिद्ध कहा गया है। सिद्ध तो असली रूप में अप्रसिद्ध ही है उसी प्रकार जो साधन करता हो यत्न से ही उसकी सिद्धि होती है, इससे यह सिद्ध होगया कि योग ही सब से बढ़कर साधन है। इसी अभिप्राय से कहा गया है कि योग के समान साधन श्रुति स्मृति में नहीं है। उस योग के धारण करने वाले श्रेष्ठ हैं यह सब जगह देखा जाता है, इस प्रकार योगी श्रेष्ठ हैं, उनकी श्रेष्ठता गम्य रूप से भी कही गई है। जैसा कि पद्म पुराण में कहा है, हे धर्माधर्मधारियों में श्रेष्ठ ? स्थान और गुणके अनुसार वर्णों और आश्रमों की मर्यादा को स्थापित किया, धर्म के पालन करने वाले वर्णाश्रमों का स्थान

लोक है, और हे राजन् ? ब्राह्मणों का स्थान प्राजापत्य है। क्षत्रियों का स्थान ऐन्द्र है, और ऊर्ध्वरेता संन्यासियों का जो स्थान कहा गया है वही गुरु की सेवा करने वालों का स्थान बताया है, जो सप्तर्षियों का स्थान कहा है वही वनवासियों का है, गृहस्थियों का प्राजापत्यस्थान है और संन्यासियों का ब्रह्मनामक स्थान है। जो ब्रह्म का अमृत पद है वह योगियों का स्थान है। सदा उद्योगी और एकान्तवासी जो योगी हैं उनका वह स्थान है जिसको ब्रह्मज्ञानी लोग ही देखते हैं। चन्द्र सूर्य आदि ग्रह नष्ट हो होकर वार २ उत्पन्न होते हैं परन्तु प्राणायाम में तत्पर योगी लोग फिर नहीं लौटते। गीता में भी कहा है वेदों यज्ञों तपों और दानों में जो पुण्यफल कहा है उस पुण्य फल को तत्त्व वेत्ता योगी पार कर जाता है उस फल से भी आगे बढ़ जाता है। और मुख्य स्थान को प्राप्त हो जाता है।

मू०—एवंसर्वनमस्कार्यमेतन्मतमिति।

तस्मयूयंकेऽपियदेतभयन्मतेश्रुतिः साधिकानास्तीतितेषामज्ञा-त्वामतद्रहस्यमेवंवदतांयुष्माकंतात्पर्यमस्माभिर्विदितप्रायमेवेति। तदेवमस्ति। एवंप्रतीयमाना अपिकदाचिच्छ्रुत्याश्रयत्वमङ्गीकुर्व-न्तुनामैते। तन्नकरिष्यते। किन्त्वेतत्साक्षादनिर्वचनीयंतत् सत्य-स्वरूपंतत्त्वंयस्याऽऽश्रयत्वंसर्वस्यविदितमेवोततस्यैव प्रवृत्तिशास्त्रा-

श्रयत्वंकेन प्रकारेणाङ्गीक्रियते । यदस्माकमत्रश्रुत्याश्रयाणाङ्गीकरणंतद्ब्रह्मणिवमंत्र्याश्रयणाङ्गीकरणंभवति । तथाचोक्तंमहाभारते मोक्षधर्मे—

ऋचोयजूंषिसामानिशरीराणिव्यपाश्रिताः ।
जिह्वाग्रेषु प्रवर्तन्तेयत्नसाध्याविनाशिनः ॥
नचैवमिष्यतेब्रह्मशरीराश्रयसंभवम् ।
नयत्नसाध्यंतद्ब्रह्मनादिमध्यंनचान्तवित् ॥
ऋचामादिस्तथा साम्नांयजुषामादिरुच्यते ।
अन्तश्चादिमतांदृष्टोनत्वादिर्ब्रह्मणः स्मृतः ॥
अनादित्वादनन्त्वात्तदनन्तमथाऽव्ययम् ।
अव्ययत्त्वाचनिर्दुःखं द्वन्द्वाभावस्ततः परम् ॥
अन्यच्च, अग्निर्यथाह्युपायेनमथित्वादारुदृश्यते ।
तथैवात्माशरीरस्थोयोगेनैवात्रदृश्यते ॥

पुनः—
आदिज्ञानीभवेद्ब्रह्मायुगादिज्ञानियोगिनः ।

गीतायाम्—
यामिमां पुष्पितांवाचंप्रवदन्त्यविपश्चितः ।

वेदवादरताः पार्थ ? नान्यदस्तीतिवादिनः ॥
कामात्मानः स्वर्गपराजन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलांभोगैश्वर्यगतिंप्रति ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानांतयाऽपहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौननिधीयते ॥

येनचपरमवेदप्रणवस्याश्रयोऽङ्गीकृतोवातेनस्थूलवेदस्याऽऽश्रयोनाङ्गीकर्तव्यः ।

चतुर्वेदविदोविप्राः सूक्ष्मब्रह्मविदन्तिन ।
वेदभारभराक्रान्तास्तेविप्राः पुरुषाधमाः ॥

एतदेवाभिप्रत्येकावेषयगीतायाम्—

दुर्वासा कश्चिन्मुनिर्बहुविधशास्त्रपुस्तकभारैः सहमहादेवनमस्कर्तुमागत्यतत्सभाया नारदेनकेनचिन्मुनिनाभारवाहिगर्दभसाम्यमापादित, कोपात्पुस्तकानिलवणार्णवेपरित्यज्यमहादेवेनाऽऽत्मविद्यायांप्रवर्तितइति ।

गृहेगृहेपुस्तकभारभाराः पुरेपुरेपंडितयूथयूथाः ।
वनेवनेतापसवृन्दवृन्दानब्रह्मवेत्तानचकर्मकर्ता ॥

एवंचबहव प्रस्तावा सन्तीति, एकमुत्तरम् ।

भा०—इसलिये यह मत सबके नमस्कार करने योग्य है। उस विषय में तुम में से कोई यह कह सकता है, कि आपके मत को सिद्ध करने वाला श्रुति का प्रमाण नहीं मिल सकता। उन योगियों के तात्पर्य को न जानकर आपलोग जो यह कहते हैं, आपके तात्पर्य को भी हम जानते ही हैं, वह ऐसे हैं कि इस प्रकार बार २ उकसाए जाने पर भी हम श्रुति का यह प्रमाण देकर यह स्वीकार कर लेंगे कि हमारा आश्रय भी वेद है, परन्तु हम ऐसा नहीं करेंगे, क्योंकि साक्षात् अनिर्वचनीय जो सत्य तत्त्व है और सर्व प्रसिद्ध सबका आश्रय है, वह प्रवृत्ति शास्त्र के सहारे है यह माना ही कैसे जा सकता है। क्योंकि यह स्वीकार करना कि हमारा आश्रय भी वेद है, ऐसी ही बात है जैसे यह कहना कि मंत्री राजा के सहारे है। जैसा कि महाभारत में मोक्ष धर्म में कहा है—

ऋग् यजु साम ये शरीरों के सहारे रहने वाले हैं बड़ा यत्न करने पर कंठस्थ रहते हैं और नाशवान् हैं। परन्तु ब्रह्म शरीर के आश्रय रहने वाला नहीं है। वह न यत्न साध्य है, न आदि मध्य और अन्त युक्त है, ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद का आदि मध्य और अन्त है, परन्तु ब्रह्म का आदि और अन्त न होने से वह अनन्त और अव्यय कहा गया है

अनन्त होने से दुःखरहित और द्वन्द्वातीत कहा गया है। और भी देखिये जैसे उपाय पूर्वक लकड़ी के मथने से उसमें अग्नि दीख पड़ती है, इसी प्रकार योग से शरीर में आत्मा प्रकट हो जाता है, और देखिये—ब्रह्मा सृष्टि के आरम्भ से उसका ज्ञान रखता है, परन्तु योगी लोगों को कल्प कल्पान्तरों का ज्ञान होता है। गीतामें भी कहा है—जो वेद वाद में लगे हुए और कुछ नहीं है ऐसा कहने वाले कामनाओं से ग्रस्त भोग ऐश्वर्य तथा जन्म कर्म फल देने वाली क्रियाओं से जटिल (पेचीदी) चिकनी चुपड़ी बातें करते हैं ऐसे लोगों द्वारा जिन का मन हरण हो चुका है जो भोग और ऐश्वर्य के लालची हैं उनकी बुद्धि समाधि में निश्चयात्मक नहीं हो सकती। जिसने परमवेद ओंकार का आश्रय लिया है वह कैसे स्थूल वेद का आश्रय कर सकता है। चारों वेदों के ज्ञाता जो ब्राह्मण सूक्ष्म ब्रह्म को नहीं जानते वे वेद के भारी बोझ से व्यर्थ ही अपनी बुद्धि का क्षय करते और वे ब्राह्मणों में अयोग्य है। यही समझ कर कावेयव गीता में कहा है कि—दुर्वासा नाम का कोई मुनि नाना प्रकार के पुस्तकों के बोझ को उठाकर महादेव को नमस्कार करने आया तो नारद मुनि ने उसको गधे की उपमा दी तब उसने क्रोध में आकर उन सब पुस्तकों का भार समुद्र में फेंक दिया और

महादेव ने उसको आत्मविद्या में लगाया। घर २ में पुस्तकों के बोझ हैं। नगर २ में पंडितों के झुंड हैं जंगल २ में तपस्वियों की टोली हैं परन्तु न तो उनमें कोई ब्रह्म वेत्ता है और न कर्म कर्ता है। इस प्रकार बहुत से प्रस्ताव हैं उनमें यह पहला एक उत्तर है।

मू०—पुनर्भवद्भिस्तु श्रुतयः पुनः पुनरुच्यन्ते, तत् किमिति। वेदास्तुकर्मनिरूपकास्तदधिकारिणामेवौचित्यंदर्शयन्ति। एतेयोगिनस्तुसंसारत्यागीनो निष्कर्माणः। किंचवेदेषुमुख्यत्वेनाग्निहोत्रादि यज्ञकर्म्माणि दृश्यन्तेतानिचाग्निसाध्यानि। एतेतुनाग्नेः स्पर्शमपि कुर्वन्ति। ['अग्नेरेवगृहपतित्यमिहाग्नेगृहंते'] इत्यादि श्रुतेः। यतएतेषांकिमाचरणमुपधार्यैतान्निरूपयन्ति। बाहुल्येनवेदविदाश्चैते किंप्रयोजनमङ्गीकृत्याऽङ्गीकुर्युर्वाचोविलायनंहितादित्यादिश्रुति वाक्यैरेव। एवं विस्मृत्यसुधियोविरमन्ति। शब्दादित्यादिपुराण वाक्यैरेवचतदनङ्गीकरणंदर्शितम्। किंच ['नाऽयमात्माप्रवचनेन लभ्योनमेधयानबहुनाश्रुतिनेतिश्रुतेः]। बहुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथैवकिम्। [अन्वेष्टव्यः प्रयत्नेनतत्त्वज्ञैर्ज्योतिरान्तरमिति]।

अधीत्यचतुरोवेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः।
ब्रह्मतत्त्वंनजानन्ति दर्वीपाकरसंयथा॥

अनन्त होने से दुःखरहित और द्वन्द्वातीत कहा गया है। और भी देखिये जैसे उपाय पूर्वक लकड़ी के मथने से उसमें अग्नि दीख पड़ती है, इसी प्रकार योग से शरीर में आत्मा प्रकट हो जाता है, और देखिये—ब्रह्मा सृष्टि के आरम्भ से उसका ज्ञान रखता है, परन्तु योगी लोगों को कल्प कल्पान्तरों का ज्ञान होता है। गीतामें भी कहा है—जो वेद वाद में लगे हुए और कुछ नहीं है ऐसा कहने वाले कामनाओं से ग्रस्त भोग ऐश्वर्य तथा जन्म कर्म फल देने वाली क्रियाओं से जटिल (पेचीदी) चिकनी चुपड़ी बातें करते हैं ऐसे लोगों द्वारा जिन का मन हरण हो चुका है जो भोग और ऐश्वर्य के लालची हैं उनकी बुद्धि समाधि में निश्चयात्मक नहीं हो सकती। जिसने परमवेद ओंकार का आश्रय लिया है वह कैसे स्थूल वेद का आश्रय कर सकता है। चारों वेदों के ज्ञाता जो ब्राह्मण सूक्ष्म ब्रह्म को नहीं जानते वे वेद के भारी बोझ से व्यर्थ ही अपनी बुद्धि को दबाते और वे ब्राह्मणों में अयोग्य हैं। यही समझ कर कावेयय गीता में कहा है कि—दुर्वासा नाम का कोई मुनि नाना प्रकार के पुस्तकों के बोझ को उठाकर महादेव का नमस्कार करने आया तो नारद मुनि ने उसको गधे की उपमा दी तब उसने क्रोध में आकर उन सब पुस्तकों का भार समुद्र में फैंक दिया और

महादेव ने उसको आत्मविद्या में लगाया। घर २ में पुस्तकों के बोझ हैं। नगर २ में पंडितों के झुंड हैं जंगल २ में तपस्वियों की टोली हैं परन्तु न तो उनमें कोई ब्रह्म वेत्ता है और न कर्म कर्ता है। इस प्रकार बहुत से प्रस्ताव हैं उनमें यह पहला एक उत्तर है।

मू०—पुनर्भवद्भिस्तु श्रुतयः पुनः पुनरुच्यन्ते, तत् किमिति। वेदास्तुकर्मनिरूपकास्तदधिकारिणामेवौचित्यंदर्शयन्ति। एतेयोगिनस्तुसंसारत्यागीनो निष्कर्माणः। किंचवेदेषुमुख्यत्वेनाग्निहोत्रादि यज्ञकर्म्माणि दृश्यन्तेतानिचाग्निसाध्यानि। एतेतुनाग्नेः स्पर्शमपि कुर्वन्ति। ['अग्नेरेवगृहपतित्वमिहाग्नेगृहंते'] इत्यादि श्रुतेः। यतएतेषांकिमाचरणमुपधार्यैतान्निरुपयन्ति। बाहुल्येनवेदविदा स्त्वैते किंप्रयोजनमङ्गीकृत्याऽङ्गीकुर्युर्वाचोविग्लापनंहितदित्यादिश्रुति वाक्यैरेव। एवं विस्मृत्यसुधियोविरमन्ति। शब्दादित्यादिपुराण वाक्यैरेवचतदनङ्गीकरणंदर्शितम्। किंच ['नाऽयमात्माप्रवचनेन लभ्योनमेधयानबहुनाश्रुतिनेतिश्रुतेः]। बहुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थे न वृथैवकिम्। [अन्वेष्टव्यः प्रयत्नेनतत्त्वज्ञैर्ज्योतिरान्तरमिति]।

अधीत्यचतुरोवेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः।
ब्रह्मतत्त्वंनजानन्ति दर्वीपाकरसंयथा ॥

इत्यादि। किंच, एतेषामसत्स्वरूपभूतानां महिमानं निरूपयन्तो वेदामुह्यन्तीयवाऽऽवृत्तिविषयत्वात्। तथाचकर्मकाण्डे मुख्यमपि ज्ञाननमुख्यत्वेनदर्शयन्ति, दर्शितेचतस्मिन् कर्ममोहएव स्यात्। एवज्ञानकाण्डेचयोगतन्महिम्निदर्शितेज्ञानमोह स्यादिति। तथा च वेदेषु तन्महिमानोपलभ्यतइत्येतदेवाभिप्रेत्योशोगपर्वणिमनत्सुजातीयउक्तम्—आभातिशुक्लमिव लोहितमिवाथोकृष्णमायसमर्कवर्णम्। नपृथिव्यातिष्ठतिनान्तरीक्षेनैतत्समुद्रेसलिलंबिभर्ति। नतारकासुनचविद्युताश्रितनचाऽभ्रेषुदृश्यते रूपमस्य। नचापि वायौ नचदेवतासुनैनचन्द्रे दृश्यते नोतसूर्ये। नैवर्क्षुतन्नयजु पुनास्य थर्वसुनदृश्यतेवैविमलेषुमामसु। रथन्तरेयार्हद्रथेयापिराजन् ? महाव्रतेनैवदृश्यतेध्रुवतत्। अपारणीयतमस परस्तात्तदन्तकोप्येतिविनाशकाले अणीयरूपक्षुरधारयातमहच्चरूपतद्वैपर्वतेभ्य।

सा प्रतिष्ठावदमृतंलोकास्तद्ब्रह्मतद्यशः।
भूतानिजज्ञिरेतस्मात्प्रलयंयान्तितत्रहि॥
अनामयतन्महदुद्यतंयशोवाचोविकारकवयोवदन्ति।
तस्मिन्जगत्सर्वमिदंप्रतिष्ठितंयेतद्विदुरमृतास्तेभवन्ति।

ननुतद्विदुरित्यनेनयोगोपसर्जनज्ञानमेवोक्तमितिचेन्न एतस्यैव शास्त्रस्यास्मिन्नध्याये।

यत्तच्छुक्लंमहज्ज्योतिर्दीप्यमानंमहद्यशः ।
तद्वैदेवाउपासन्तेतस्मात्सूर्योविराजते ॥
योगिनस्तंप्रपश्यन्तिभगवन्तंसनातनमित्यादि ।

सविस्तरमुक्तम्। अतोग्रन्थभारवहनंवृथैवकिन्तु तदन्तर्गतसो पयुक्तंसारमात्रंगुरुवाक्याद्गृहीत्वायोगेनकृतकृत्यो भवेदिति ।

आत्मनस्तत्त्वमज्ञात्वामूढः शास्त्रेषुमुह्यतिः ।
गोपकक्षागतच्छागेकूपेपश्यतिदुर्मतिः ॥
विदन्तोनात्मनोभावंवदन्तोपनिषद्गिरः ।
रहस्युपनिशन्त्यन्येस्वयंनानुभवन्तिते ॥
विहाययोगशास्त्राणिनानागुरुमतानिच ।
अहंकाराद्धताकेचिज्ज्ञात्वाशास्त्रसमुच्चयम् ॥
उपदेशंनजानन्तिनचग्रन्थशतैरपि ॥

इति द्वितीयउत्तरम् ।

प्र०—फिर आप तो बार २ वेद ही पुकारते हैं, यह क्या बात है वेद तो कर्म का निरूपण करते हैं, इसलिये कर्माधिकारियों के लिए ही उचित है ये योगी लोग तो कर्म रहित संसार त्यागी हैं। दूसरे वेद में मुख्य रूप से अग्नि- होत्रादि कर्मों का विधान है ये सब अग्नि साध्य हैं। ये लोग

योगियों को ही उसका अधिकारी कहा गया है। इस लिए किताबों का बोझ ढोना वृथा है। किन्तु उस में से अपने लिये उपयुक्त सारभूत गुरु के वचन से ग्रहण करके योग से कृतकृत्य हो जाय। आत्मा के तत्त्व को न जान कर मूढ ही शास्त्रों की मूल भुलैया में घूमता फिरता है। जैसे किसी का बकरा उसी के मकान में आ बैठा पर वह मूर्ख उसे कूप में ढूंढता है। उसी तरह बहुत से लोग आत्मा के अस्तित्व को न जानते हुए उपनिषदों के वचनों को बोलते हुए दूसरों को रहस्य का उपदेश करते हैं, पर स्वयं अनुभव नहीं करते।

योग शास्त्र और गुरु वाक्यों को छोड़कर अहंकार में फंसे हुए शास्त्रों के ढेर को भी जान कर सैंकड़ों ग्रन्थों से भी उपदेश को नहीं जानते। यह दूसरा उत्तर है।

मू०—पुनस्तदेवमुख्यंतयोच्यते—

श्रुतिस्त्वस्मिन्नपिमते साधिकैवास्ति, परन्त्वेतन्मतस्य बोधो युष्माकंनास्ति। तेनयूयंशंकरवैष्णवप्रवर्तितमार्गानुसारित्वमालम्ब्यवदथ—श्रुतिःसाधिकानास्तीति, तत्सत्यं शंकररामानुजादिश्रुतयपश्चात्र साधिकामाभवन्तुनाम श्रुतयस्तुभविष्यन्त्येवसाधिका इत्ययं भावः। वेदस्तुशाखाभेदैरनेकधाविस्तृतः। तत्रपश्चा

दुपनिषदो निबन्धाः कृताः, ततोप्यधिका उपलभ्यन्ते । न निबन्धेनप्रायो निर्णयव्यवहारः । तत्रापिशङ्करेण दर्शिताऽभिमता-उपनिषदर्द्दशकेनेत्यादयः प्रसिद्धाः । रामानुजप्रभृतिभिस्तुदशस्वपिशङ्कराभिमतादन्योर्थ इतिस्पष्टमुद्दीर्यते । एवमन्येऽपि स्वाभिप्रायानुसारियेदस्यतात्पर्यंवर्णयिष्यन्ते । तावतातत्तात्पर्यं तेषामेव, न तुवेदस्येति । यथाविरोचनः प्रजापतिनाऽनुशिष्टोऽपि स्वचित्तदोषेणदेहआत्मत्वबुद्धिदृढीकृत्याऽसुरान्सर्वाननुशशासेतिछान्दोग्येस्पष्टमाख्यायिकास्ति । यतोयोगिनांस्थूलवेदे प्रयोजनमेवनास्ति, सर्ववेद मूलभूत ओंकारएवप्रयोजनंतात्पर्यं च । तत्र सर्व वेदानांलयोद्यौभयतोयतओंकारप्रतिपादिकाः सर्वाःश्रुतयोऽत्र साक्षिकाः तथाहिवेदस्यसारतरः प्रणवः । भूरित्येवर्ग्वेदादजायतभुवइतियजुर्वेदात् स्वरितिसामवेदात् , तानिशुक्राण्यभ्यतपत् तेभ्यस्त्रयोवर्णाअजायन्तअकारउकारोमकारइति । ता अनेकधाममभरत् तदेतदोमिति ।

भा० टी०—पुनः मुख्य उत्तर इस प्रकार दिया जाता है । हमारे मत को श्रुति सिद्ध करती है, परन्तु तुमको इस मत का ज्ञान ही नहीं है । इसी से तुम शंकर और वैष्णवों के चलाए हुए मार्ग के अनुयायी बन कर कहते हो कि श्रुति तुम्हारे मत

को सिद्ध नहीं करती। यह सत्य है कि शंकर और रामानुज के मत की आधार भूत श्रुतियां हमारे मत की साधक न हों परन्तु श्रुतियां साधक अवश्य हैं। वेद तो नाना शाखाओं के भेद में बहुत विस्तृत है। यहां पचास उपनिषदों के निबन्ध किए गए हैं। और उन से भी अधिक मिलते हैं। निबन्ध से निर्णय नहीं होता उन में से भी शंकर ने ईश, केन, आदि दश ही प्रसिद्ध उपनिषद् मानी हैं। रामानुजादि ने उन दशों में शंकर के किए अर्थ से भिन्न अर्थ का स्पष्ट प्रति पादन किया है। इसी प्रकार और लोग भी अपने अभिप्राय के अनुसार वेद का तात्पर्य वर्णन करेंगे। उनका यह तात्पर्य उन्हीं का समझा जायगा न कि वेद का, जैसे प्रजा पति ने विरोचन को उपदेश दिया तो भी वह अपने चित्त के दोष से देह में ही आत्म बुद्धि का निश्चय करके देह ही आत्मा है ऐसा असुरों को बताया। यह आख्यायिका छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट है। इस लिए योगियों का स्थूल वेद से कुछ भी प्रयोजन नहीं है उनका प्रयोजन और तात्पर्य तो केवल ओंकार में ही है। यहीं से सब वेदों की उत्पत्ति और लय होता है। इस लिये ओंकार के प्रतिपादन करने वाली सब श्रुतियां यहां साधक हैं। क्योंकि ओंकार ही वेद का सार है, ऋग्वेद से भूः यजुः

से भुवः और साम वेद से स्वः प्रजापति के निचोड़ने से उत्पन्न हुए और उन से अकार उकार और मकार ये तीन वर्ण और इन तीनों से ओंकार बना ।

मू०—बह्वृचब्राह्मणे—अस्यचप्रणवस्यओमित्येतदक्षरमिदंसर्वमिति माण्ड्यांत्स्यश्रुतौतन्मात्राणांचाकारोकारमकाराणां क्रमात्स्थूलकारणप्रपंचवाचकयोरभेदात्पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरत्रप्रविलापनेगुरुयुक्त्याक्रियमाणे स्थूलस्यजगतो वेदस्ययासूक्ष्मेलवणोदकन्यायेन-प्रविलयो भवति तथा सूक्ष्मस्यकारणेकारणस्यतुर्येऽर्धमात्रावाच्ये मात्रात्ये शिवमद्वैतं चतुर्थमन्यन्ते, इतिश्रुतेर्गलिताखिलद्वैतभावे वाङ्मनसाऽतीतेप्रविलयोभवति। अतःप्रणव एववेद इत्यभ्युपगम्य तद्द्वारा तत्प्रवर्तक नादब्रह्मेत्यवलम्ब्यनादब्रह्मणोयन्मूलंतत्तत्त्वमिति विश्वान्तिमतांमते का वाश्रुतिः साधिकाम भवतीति प्रसिद्धितमेव सर्वत्र ।

भा०—ऋग् वेद के ब्राह्मण भाग में इस प्रणव का महत्व प्रतिपादन किया गया है कि यह सब दृश्य जगत् अक्षर स्वरूप ओम् है सर्वाडम्य श्रुति में उसकी अकार उकार और मकार इन मात्राओं का स्थूल कारण और प्रपंच वाचक के साथ अभेद होने से पूर्व २ का आगे २ में गुरु की युक्ति के अनुसार

प्रविलय किये जाने पर स्थूल जगत् और वेद का सूक्ष्म में पानी में नमक के समान प्रविलय हो जाता है अर्थात् मिल जाता है।

तथा सूक्ष्म का कारण और कारण का अर्धमात्रा के बाद तुरीय में अद्वैत शिव चतुर्थ को मानता है। इस श्रुति के अनुसार वाणी और मन से परे समस्त द्वैत से रहित ब्रह्म में विलय होता है।

इस लिये प्रणव ही वेद है यह मान कर उस के द्वारा उस का प्रवर्तक नाद ही ब्रह्म है यह मान कर नाद ब्रह्म का,जो मूल है वह सत्य है इस प्रकार मानने वालों के मत में कौनसी श्रुति साधक नहीं है ? अपितु सब ही हैं यह सब जगह प्रसिद्ध है।

मू०—प्रणवप्रशंसा शिवोपनिषदि—

प्रणवः सर्वान् प्राणानुप्राणमयति चैतस्मात् प्रणवश्चतुर्धा वस्थित इति वेददेवयोनिर्ध्येयश्चेति सन्धत्तासर्वेभ्यो दुःसहेभ्यः सन्तारयति तारणात्तानि सर्वाणीति।

ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च ईश्वरः शिवएव च।
पंचधापंच दैवत्यः प्रणवः परिपठ्यते ॥

तस्माधिकंक्षणमेकमास्थायक्रतुशतस्यापिफलमवाप्नोतिकृत्स्नमों कारगतंच सर्वज्ञानेनेति। माण्डूक्योपनिषदि च—

ओंकारंच्छन्दसांज्ञात्वान किंचिदपि चिन्तयेत् ।
युञ्जीत प्रणवे चेतःप्रणवोब्रह्म निर्भयम् ॥
प्रणवे नित्ययुक्तस्यनभय विद्यतेक्वचित् ।
प्रणवोह्यपरंब्रह्मप्रणवश्चापरः स्मृतः ॥
अपूर्वोऽनन्तरोबाह्योनपरः प्रणवोऽव्ययः ।
सर्वस्यप्रणवोह्यादिर्मध्यमन्तस्तथैवच ॥
एवंहिप्रणवंज्ञात्वाविशतेतदनन्तरम् ।
प्रणवंहीश्वरंविद्यात्सर्वस्य हृदयेस्थितम् ॥
सर्वव्यापिनमोंकारंमत्वाधीरोनशोचति ।
अमात्रोऽनन्तमात्रश्चद्वैतस्योपशमः शिवः ॥
ओंकारोविदितोयेनसमुनिर्नेतरोजनइति ।

[हृदारण्यके सयथार्द्रेन्धानामेरभ्याहितात्तथाप्रुथग्धूमाविनिश्चरन्त्ये वंवा, इत्यादि, छान्दोग्य ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमित्यादि । एतदेवा भिप्रेत्यमहाभारतेसनत्सुजातीयवचनम्—

यतो न वेदा मनसासहैव मौनंप्रविशन्तिततोऽथ मौनम्
यत्रोत्थितो वेद शब्दस्तथाऽयं सतन्मयत्वेन विभाति राजन् ॥

भागवतेचाप्येकादशस्कन्धे—

स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् ।
अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥
मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणाऽनन्तशक्तिना ।
भूतेषु घोषरूपेण विसेपूर्णेव लक्ष्यते ॥
यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ।
आकाशाद्घोषवान् प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥
छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ।
ओंकाराद्व्यञ्जितस्पर्शस्वरोष्मान्तस्थभूषिताम् ॥

इत्यादि । अन्यत्र (वेदः प्रणववर्णानां धर्मोऽहं वृषरूपधृक् । उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥) (त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी । विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥) (विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः इत्यादि ।) गीतायां च (ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्) ॥ एवमन्यत्रापि बहुधा प्रपंचितम् शब्दस्य चिन्मय [illegible] [illegible] ।

भा० टी०—शिखोपनिषद् में प्रणवकी प्रशंसा की गई है। कि प्रणव ही सब प्राणों को अनुप्राणित करता है इस लिये प्रणव चार प्रकार से स्थित है। वेद देव योनि और ध्येय इस प्रकार धारण करने वाला है। वह उन सबको दुःसह दुःखों से तार देता है। ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और शिव इस प्रकार से पांच देवताओं वाला प्रणव पांच प्रकार से कहा जाता है। एक क्षण मात्र भी उसका ध्यान करने से सो यज्ञों का समस्त फल प्राप्त कर लेता है। मांडूक्योपनिषद् में भी ओंकार से वेदों को जान कर कुछ भी न सोचे। प्रणव में ही मन को लगाये प्रणव ही निर्भय ब्रह्म है जो नित्य प्रणव में लगा रहता है उसको कुछ भी भय नहीं है प्रणव ही अपर और पर ब्रह्म है प्रणव अपूर्व अनन्तर और बाह्य है।

अव्यय प्रणव से बढ़ कर कुछ भी नहीं है, प्रणव सब का आदि मध्य और अन्त है। इसप्रकार प्रणवको जान कर जिज्ञासु फलता फूलता है। प्रणव ही सब के हृदय में स्थित ईश्वर है, सर्वव्यापी ओंकार को जान कर धैर्यवान् पुरुष शोक नहीं करता प्रणव मात्रा रहित और अनन्त मात्राओं वाला है द्वैत का नाशक और कल्याण कारक है ओंकार को जिसने जान लिया वही मुनि है। अन्य नहीं बृहदारण्यक में भी वर्णन है—जैसे गीले इन्धन वाले अग्नि से अलग २ धूमनिकलता है उसी प्रकार

ओंकार रूप ब्रह्म से सब वेद निकलते हैं। छान्दोग्य में भी कहा है कि ओम् यह अक्षर साम वेद स्वरूप है।

इसी अभिप्राय से महाभारत में सनत्सुजात का वचन है। कि जहां वेद मन के साथ ही मौन धारण कर लेते हैं हे राजन्, जहां जाकर यह वेद शब्द, तन्मय रूप से शोभायमान होता है।

भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय में उद्धव के प्रति श्री भगवान् का वचन है कि समस्त ससार का धारण करने वाला यह परमात्मा ही उपाधि वश से सूक्ष्म और स्थूल उभय रूप वेद स्वरूप होता है। उस परमात्मा का विकाश लिङ्गगुदा के मध्य मूलाधार १ लिङ्ग मूल में स्वाधिष्ठान २ नाभि प्रदेश में मणिपूर ३ हृदय देश में अनाहत ४ कण्ठ देश में विशुद्ध ५ भ्रूमध्य में आज्ञा ६ इन छः चक्रों में होता है। उन में पहले नाद सहित परा नाम प्राणवायु के साथ मूलाधार रूप गुदा में प्रविष्ट होता है, यह किसी मन इन्द्रिय का विषय नहीं है, इस लिये उसका नाम 'परा' है फिर नाभि देश में आने पर सूक्ष्म मनोमय रूप पश्यन्ती और हृदय देश में मध्यमा को प्राप्त होता है, इतने तक सूक्ष्म वेद कहलाता है। फिर कण्ठ से ऊपर मुख देश में वैखरी रूप को प्राप्त होता है, यहां ह्रस्व दीर्घप्लुत इन तीन मात्राओं उदात्त अनुदात्त स्वरित इन तीन स्वरों तथा

ककारादि वर्ण (अक्षरों) के रूप को धारण करता है, यही वैखरी नाद सब के श्रवण गोचर होता है। वही स्थूल वेद हैं। साधारण मत से अकार से लेकर क्ष तक उनंचास अक्षर हैं, श्री लकार मानने वालों के मत में पचास वर्ण माने जाते हैं। व्याकरण शिक्षा में तो ६२ माने जाते हैं।

उसी ११ वें स्कन्ध के २१ वें अध्याय के ३६ वें श्लोक में वर्णित है कि समस्त वेद परमात्मा को ही बताता है। वहां पर संदेह हुआ कि यदि ऐसा है तो वेदज्ञ जैमिनी आदि ऋषि लोग क्यों नहीं बताते उस पर भगवान् ने उत्तर दिया है कि वेद रूप शब्द ब्रह्म अत्यन्त कठिन है, सिवाय मेरे इस के वास्तविक रूप और अर्थ को और कोई नहीं समझ सकता यही मूलाधार में प्राणमय परा नाम वाला है, नाभि में पश्यन्ती नामक मनोमय सूक्ष्म रूप होता है, और मध्यमा नामक इन्द्रिय मय होता है। इसका अन्त और पार नहीं है। अर्थ से दुर्गेय है। अगाध समुद्र की तरह इस में बुद्धि का प्रवेश होना कठिन है। व्यापक-विकार रहित-अपरिगणित शक्ति सम्पन्न मेरे से ही सारा चराचर जगत् अधिष्ठित ह। जैसे कमल की डंडी में सूक्ष्म तार होते हैं उसी प्रकार समस्त प्राणियों में से सूक्ष्म रूप मुझ को ही नाद रूप से विद्वान् लोग पहचानते हैं। अब तीन श्लोकों से वैखरी वाक्के उत्पत्ति प्रकार

को दृष्टान्त द्वारा कहते हैं—जैसे मकड़ी हृदय से मुख के द्वारा तार निकालती है वैसे ही हृदयाकाश स्थित सूक्ष्म ओंकार रूप ध्वनि से उपाधि रहित होने पर भी प्राण उपाधि सहित हिरण्यगर्भ रूप वेद रूपी भगवान् वर्णों के संकल्प करने वाले मन द्वारा अकारादिस्वर ककरादि स्पर्श, श ष स ह ऊष्मा य र ल व अन्तस्थ इत्यादि अनेक रूप धारण करने वाली बृहती रूप वैखरी वाक की उत्पत्ति करता है। आगे के श्लोक से इसका सम्बन्ध है—प्रणव रूप वेद है और युग के आदि में सर्वश्रेष्ठ धर्म रूप भी मैं ही हूँ। उसी को अहंभाव से धर्मात्मा लोग उपासना करते हैं।

त्रेता युग में मेरे हृदयस्थ प्राण से त्रयी वेद विद्या प्रकट हुई। उस में यज्ञ रूप में ही था। मुख-बाहु-उरु—पाद से उत्पन्न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब उसकी उपासना करते हैं इत्यादि।

*गीता में भी कहा है—कि ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उस ओम् का वाचक जो मैं हूं मेरा स्मरण करता हुआ जो देह को त्यागता है वह परम गति को प्राप्त होता है। इस प्रकार अन्यत्र भी विस्तार के साथ प्रणव की महिमा वर्णन की गई है। वह विस्तार के भय से नहीं लिखी गई है। यह तीसरा उत्तर है।

मू०—पुनः वेदार्थस्यबोधस्तुकेषांचिन्नास्तिएव, केवलमभिमानमेयतिरस्कृत्ययेवदन्तितवान्प्रतिचतुर्थमिदमुत्तरम्— यद्भवद्भिर्वेदोवेदइतिपुनः पुनरुच्यते । तस्यवेदस्यत्वभ्यासेऽप्यवधूतानांदोपएवस्यात् । कथमितिचेदुच्यतेवेदस्यपूर्वभागस्तुवर्णानामेव, वेदान्तभागस्तुभिक्षुकाणामेव । उभयविलक्षणोयोगभागस्तु अवधूतानाम् । वेदस्यपूर्वभागे ज्ञानं वाच्यार्थेननदर्शितम् । किन्तु तात्पर्येतदस्तीतिभवद्भिरेवोच्यते । एवंवेदस्यपूर्वभागेज्ञानंयथातात्पर्येऽस्तितथावेदान्तभागेयोगस्तात्पर्यार्थोऽस्ति । यद्यपिबहुधावाच्यार्थेनापिदर्शितोयोगस्तथापिमुख्यमुत्तरन्तुमुख्यतात्पर्यएवास्ति, यतोवेदवेदान्ततात्पर्यं लक्ष्यश्चावधूतएवास्ति ।

सर्वेवेदायत्पदमामनन्तीत्यादिश्रुतयो ।
वेदैश्चसर्वैरहमेववेद्यइत्यादिस्मृतयो ॥

रूपेऽप्यसद्सतीतत्ववेदसृष्टेर्बीजांकुराः विय नचान्यद्रूपकस्य ।
युक्ताः समचमुभयत्रविचिन्वतेत्वांयोगेन वह्निमिवदारुपुनान्यतः स्यात् ॥

इत्यादिपुराणवाक्यानिचात्रसाधकानि । एतदेवाभिप्रेत्यमहाभारतेसनत्सुजातआह—

नवेदानांवेदिताकश्चिदस्तिकश्चित्वेतान्बुध्यतेवापिराजन् ।
योवेद, वेदान्नसवेदवेद्यंसत्येस्थितोयस्तुसवेद, वेद्यम् ॥
नवेदानांवेदिताकश्चिदस्तिवेद्येनवेदंनविदुर्नवेद्यम् ।
योवेदवेदंसचवेदवेद्यंयोवेदवेद्यंनसवेदसत्यम् ॥
योवेदवेदान्सचवेदवेद्यंनतंविदुर्वेदविदोनवेदाः ।
तथापिवेदेनविदन्तिवेदं येब्राह्मणावेदविदोभवन्ति ॥
धामांशभागस्यतथाहिवेदायथाचशाखाहिमहीरुहस्य ।
संवेदनेचैवयथामनन्ति तस्मिन्हिसत्येपरमात्मनोर्थे ॥

धृतराष्ट्र उवाच—
आख्यानंपंचमैर्वेदैर्भूयिष्ठंकथ्यतेजनः ।
तथाचान्येचतुर्वेदास्त्रिवेदाश्चतथापरे ॥
तेषान्तुकतरः सस्याद् यमहंवेदवैद्विजम् ।

सनत्सुजात उवाच—
एकस्यवेदस्याऽज्ञानाद्वेदास्तेवहवः कृताः ।
सत्यस्यैकस्यराजेन्द्र! सत्येकश्चिदवस्थितः ॥
एवंवेदमविज्ञायप्राज्ञोऽहमितिमन्यते ।

दानमध्ययनंयज्ञो लोभादेतत्प्रवर्तते ॥
सत्यात्प्रच्यवमानानां संकल्पश्चतथाभवेत् ।
ततोयज्ञः प्रतायेतसत्यस्यैवाऽवधारणात् ॥

धृतराष्ट्र उवाच—
ऋचोयजूंषियोवेद सामवेदंचवेदयः ।
पापानिकुर्वन्पापेन लिप्यतेकिंनलिप्यते ॥

सनत्सुजात उवाच—
नैनंसामान्यृचोवापि नयजूंष्यविचक्षणम् ।
त्रायन्तेकर्मणः पापान्नतेमिथ्याब्रवीम्यहम् ॥
नछन्दांसिवृजिनात्तारयन्तिमायाविनंमाययावर्तमानम् ।
नीडंशकुन्ताइवजातपक्षाश्छन्दांस्येनंप्रजहत्यन्तकाले ॥

एवंचस्थूलवेदतात्पर्ययुष्माभिः सूक्ष्मवेदतात्पर्याणामस्माकम-
समयिज्ञायवोऽनुयोगस्तत्प्रतिवाक्यमिदंचतुर्थम् ।

भा—बहुतों को वेद के अर्थ का ज्ञान तो है नहीं, केवल अभिमान के वशीभूत होकर बातें करते हैं उनके लिये यह चौथा उत्तर है कि आप लोग बारंबार वेद वेद ऐसा कहते हैं, भवधूतों को तो वेद के अभ्यास से दोष लगता है क्योंकि उन

वेद का पूर्वभाग तो वर्णों का है और उत्तर भाग भिक्षुओं का अवधूतों का योग भाग तो दोनों से विलक्षण है। वेद के पूर्व भाग में ज्ञान वाच्यार्थ रूप से वर्णित नहीं है। किन्तु लक्ष्यार्थ रूप से है यह आप लोग ही कहते हैं। इस प्रकार वेद के पूर्व भाग में जैसे ज्ञान तात्पर्यार्थ द्वारा है वैसे ही उत्तर भाग में योग भी तात्पर्यार्थ द्वारा वर्णित है, यद्यपि अधिकतर वाच्यार्थ से भी योग दिखलाया है तथापि मुख्य उत्तर तो तात्पर्य से ही है। क्योंकि वेद वेदान्त का राद्य तात्पर्य अवधूत पद में ही है। रूप रहित तुम्हारी दृष्टि के दो रूप बीजांकुर की तरह स्थूल सूक्ष्म हैं उन ही को साधारण लोग जानते हैं इनमें निज वास्तविक स्वरूप को नहीं, असली रूप को तो योगी जन ही योग द्वारा प्रत्यक्ष करते हैं। जैसे मथने से काष्ठ में अग्नि पैदा करते हैं। अन्य उपाय से नहीं। इत्यादि पुराणवाक्य और श्रुति स्मृतियाँ इसमें साधक हैं। इसी अभिप्राय से महाभारत में सनत्सुजात ने कहा है—वेदों के जानने वाला कोई नहीं है। कोई विरला ही इनको जानता है. जो वेदों को जानता है वह वेद्यब्रह्म को नहीं जानता, ब्रह्म को वह जानता है जो सत्य में स्थित है। वेदों को कोई नहीं जानता, जो वेद से जानने योग्य को जानता है वह वास्तविक वेद्य को जानता ही नहीं, जो वेद

को जानता है वह वेद को नहीं जानता, और जो वेद से वेद्य को जानता है वह सत्य को नहीं जानता। जो वेदों का ज्ञाता है वेद के जानने वाले और वेद उस को नहीं जानते। तो भी जो वेद जानने वाले ब्राह्मण होते हैं। वे वेद से ही वेद्य को अर्थात् ब्रह्म को जानते हैं। जैसे शाखा वृक्ष का एक अवयव माना जाता है और उस से उस वृक्ष का बोध होता है, इसी तरह तेजः स्वरूप परमात्मा का एक अवयव वेद हैं, वे वेद उस परमात्मा के यथार्थ ज्ञान कराने के लिये एक देश को कहते हैं।

धृतराष्ट्र सनत्सुजात से पूछता है कि वेद और पांचवां आख्यान इनके जानने वाला मनुष्य अधिक आदर के योग्य है ऐसा कहा जाता है, बहुत से चार वेदों के ज्ञाता हैं और बहुत से त्रयी के जानने वाले हैं इन में से वह कौन है जिसको मैं असली ब्राह्मण समझूं। तब सनत्सुजात ने कहा— वेद वास्तव में एक ही है, अज्ञान से लोगों ने अनेक वेद बना लिये जैसे हे राजेन्द्र वास्तविक सत्य को न जानकर लोग अनेक प्रकार के मनमाने अर्थ कर लेते हैं, उस सत्य में कोई २ ठहरता है। इस प्रकार वेद को न जानकर साधारण बुद्धिवाला पुरुष अपने को बड़ा बुद्धिमान् समझता है। दान अध्ययन और यज्ञ ये लोभ से ही प्रवृत्त होते हैं। सत्य से जो पतित हो जाते हैं

उनके नाना प्रकार के संकल्प होते हैं। फिर उस सत्य का ही निश्चय करके लोग यज्ञादि करते हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—जो ऋक् यजु और साम को जानता हुआ पाप करता है वह उस पाप से लिप्त होता है या नहीं? तब सनत्सुजात ने कहा कि उस मूर्ख का जो तीनों वेदों का ज्ञाता होता हुआ भी पाप करता है ऋक् साम यजु कोई भी नहीं बचा सकते। यह मैं तुम से सत्य कहता हूँ। माया में वर्तमान मायावी पुरुष का वेद पाप से नहीं बचा सकते जैसे पक्षी समय पर घोंसले में से उड़ जाते हैं अर्थात् उसको छोड़ देते हैं। उसी प्रकार उस मायावी पुरुष को अन्त काल में वेद छोड़ देते हैं। इस प्रकार स्थूल वेद में तात्पर्य रखने वाले तुम लोगों ने सूक्ष्म वेद को मानने वाले हम लोगों के तात्पर्य को न जानकर हम पर जो आक्षेप किया है उस का यह चौथा उत्तर है।

मू०—योगमार्गे—

नानामार्गैस्तुदुष्प्राप्यंकैवल्यंपरमंपदम्।
सिद्धमार्गेणलभ्येतनान्यथाशिवभाषितम्॥
यद्वार्येनविमुच्यन्ते नाथमार्गमतः परम्।
तमहंकथयिष्यामि तवप्रीत्यासुरेश्वरि ? ॥

अनेकशतसंख्याभिस्तर्कव्याकरणादिभिः ।
पतिताःशास्त्रजालेषु प्रज्ञयातेविमोहिताः ॥
अनिर्वाच्यपदंवक्तुं नशक्यते सुरैरपि ।
स्वात्मप्रकाशरूपं तत् किंशास्त्रेणप्रकाश्यते ॥

विशुद्धएव परमात्माजीवाभिधइत्युक्त्वाजीवस्यदोषाः काम
ोधौभयंचिन्तेत्यादिचोक्त्वा—

तस्माद्दोपविनाशार्थमुपायंकथयामिते ।
ज्ञानंकेचिद्वदन्त्यत्र केवलंतन्नसिद्धये ॥
योगहीनंकथंज्ञानंमोक्षदंभवतीश्वरि ?
अज्ञानादेवसंसाराज्ज्ञानादेवविमुच्यते ॥

तत्र योगस्य किं कार्यमिति देव्याशृष्टईश्वरउवाच—

अर्गादोषैर्विमुक्तः किंकामक्रोधभयादिभिः ।
गर्वदोषैर्युतोजीवः कथंज्ञानेनमुच्यते ॥
ध्याननिष्ठोविरक्तोवा धर्मज्ञोविजतेन्द्रियः ।
विना योगेनदेवोऽपि नमोक्षंलभतेप्रिये ॥
अपक्वाः परिपक्वाश्चद्विविधादेहिनः स्मृताः ।
अपक्वायोगहीनास्तु पक्वायोगेनदेहिनः ॥

तस्माद्ज्ञानंचवैराग्यं जपःस्यात्केवलःश्रमः ।
शरीरेणजिता. सर्वेशरीरंयोगिभिर्जितम् ॥
तत्कथंकुरुतेतेषां सुखदुःखादिजं फलम् ।
देवैरपिनलभ्येत योगदेहोमहाबलः ॥
छेदबन्धैर्विमुक्तोऽसौ नानाशक्तिधरः परः ।
यथाकाशस्तथादेह आकाशादपि निर्मलः ॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरोदेहः स्थूलात्स्थूलोजडाज्जडः ।
इच्छारूपोहियोगीन्द्रः स्वतन्त्रस्त्वजरामरः ॥
क्रीडति त्रिपुलोकेषु लीलयायत्रकुत्रचित् ।
अचिन्त्यशक्तिमान् योगीनानारूपाणिधारयन् ॥
संहरेच्चपुनस्तानि स्वेच्छयाविजितेन्द्रियः ।
पुरैवमृतएवाऽसौ मृतस्यमरणंकुतः ॥
मरणंयत्रसर्वेषां तत्राऽसौसाखि ? जीवति ।
कर्तव्यंनैवतस्यास्ति कृतेनाऽसौनालिप्यते ॥
जीवन्मुक्तः सदास्वस्थः सर्वदोषविवर्जितः ।
विरक्ताज्ञानिनश्चान्ये देहेनाविजिताः सदा ॥

तेकथंयोगिभिस्तुल्या मांसपिण्डाङ्कुदेहिनः ।

देव्युवाच—

ज्ञानिनस्तुमृतायेवै तेषांभवतिकीदृशी ।

गतिः कथयदेवेश ? करुणामृतवारिधे ?

ईश्वर उवाच—

देहान्तेज्ञानिनः पुण्यात्पापात्फलमाप्यते ।

यादृशंतुभवेत्तत्र भुक्तोज्ञानीपुनर्भवेत् ॥

पुण्यात्पुण्येनलभते सिद्धेनसहसंगतिः ।

ततः सिद्धस्यकृपया योगीभवतिनान्यथा ॥

ततोनश्यति संसारो नान्यथाशिवभाषितम् ॥

महाविष्णुमहेशानां प्रलयेप्यवियोगिनाम् ॥

नास्तिपातोलयस्थानां महातत्त्वेधिवर्तिनाम् ॥

वेदान्ततर्कोक्तिभिरागमैश्चनानाविधैःशास्त्रकदम्बकैश्च ।

ध्यानादिभिःसत्करणैर्नगम्यंचिन्तामणिंत्वेकगुरुंवि ाय॥

भा०—योग योज में कहा है कैवल्य परम पद जो कि नाना मार्गों में प्राप्त नहीं किया जा सकता, सिद्ध मार्ग में प्राप्त किया जासकता है। यह निगमों का कथन है। जो कदापि

अन्यथा नहीं हो सकता। हे सुरेश्वरि जिससे वह मुक्त हो जाते हैं वह नाथ मार्ग तेरी प्रसन्नता के लिये कहता हूं। सहस्रों तर्क और व्याकरणादि ग्रंथों के जालों में पड़े हुए अपनी बुद्धि के अभिमान में चूर रहते हैं। जो अनिर्वाच्य पद है उसे तो देवता भी नहीं कह सकते जो स्वात्म प्रकाश वस्तु है वह शास्त्रों से कैसे प्रकाशित किया जा सकता है। विशुद्ध, परमात्मा ही जीव नाम से कहा जाता है ऐसा और जीव के दोष काम क्रोध भय तथा चिन्ता इत्यादि कह कर अब मैं जिस उपाय से उसके दोषों का नाश हो सकता है वह कहता हूं। इन दोषों के नाश का उपाय बहुत से लोग ज्ञान को बताते हैं। परन्तु हे सुन्दरि ! योगहीन ज्ञान कैसे मोक्ष दे सकता है संसार का कारण अज्ञान है। और ज्ञान से वह नष्ट हो जाता है। फिर उसको नष्ट करने के लिये योग का क्या प्रयोजन है इस प्रकार देवी के प्रश्न करने पर शिव जी ने कहा—क्या यह जीव काम क्रोधादि दोषों से मुक्त है ? यह तो इनसे घिरा हुआ है, अतः कैसे ज्ञान से मुक्त हो सकता है। कोई कैसा ही ज्ञाननिष्ठ धर्मात्मा और जितेन्द्रिय अथवा देवता भी क्यों न हो हे प्रिये योग के बिना मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकता। अपक्व और परिपक्व दो प्रकार के मनुष्य हैं उनमें योगहीन अपरिपक्व और योगयुक्त परिपक्व हैं इसलिये ज्ञान वैराग्य और

जप केवल परिश्रम है समस्त संसार शरीर के वश में है और योगियों ने शरीर को जीत लिया है। वह शरीर योगियों को सुख दुःख का फल कैसे दे सकता है। महा बलवान योगयुक्त देह को देवता भी नहीं प्राप्त कर सकते। योगियों का देह छेद और बन्ध आदि से मुक्त है और नाना प्रकार की शक्तियों को धारण करने वाला है। उनका देह आकाश की तरह निर्मल है, वह सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थूल से स्थूल और भारी से भारी होता है। योगीन्द्र इच्छा रूप स्वतंत्र अजर और अमर होते हैं। योगी की शक्ति अचिन्त्य होती है। वह नाना रूपों को धारण करता हुआ अपनी लीला से जहां चाहे वहीं क्रीड़ा करता है जितेन्द्रिय वह योगी उन रूपों को जब चाहे विलीन कर सकता है। पुत्र मित्र स्त्री आदि सब प्राकृत पदार्थ के अभिमान को छोड़ कर योग साधन में लगा हुआ सिद्ध पुरुष संसार के व्यवहार से पहले ही मरा हुआ है अतः मृतका मरण कैसे होसकता है, जिस प्रलय काल में सब प्राणि अभिमान रहित हो जाने से मृत कहलाते हैं, उस समय में सिद्ध पुरुष स्वरूप ज्ञान युक्त होने से जीवित कहलाता है। उसका कोई कर्तव्य नहीं वह कभी कर्मों में लिप्त नहीं होता वह जीवन्मुक्त स्वस्थ होता है। स्वतंत्र और सब दोषों से मुक्त होता है विरक्त और ज्ञानी सब देह के आधीन होते हैं वे कुत्सित देह वाले योगियों के तुल्य कैसे हो

सकते हैं। फिर देवीने कहा हे करुणासिन्धु हे देवेश ज्ञानी योगी की मरने पर क्या गति होती है कृपया यह बताइये तब शिवजी ने कहा—देहान्त के बाद ज्ञानी को पुण्य और पाप का फल नहीं मिलता, वहां वह किसी भी जन्म को प्राप्त हो फिर भी ज्ञानी ही होता है। पुण्य से उस को सिद्ध की गति प्राप्त होती है। फिर सिद्ध की कृपा से वह योगी होता है। अन्यथा नहीं फिर उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह शिव का वचन सर्वथा सत्य है। ब्रह्मा विष्णु और महेश पदवी का प्राप्त हुए लय में स्थित और महातत्त्व में वर्तमान योगियों का प्रलय काल में भी पात नहीं होता जो योगियों को प्राप्त होता है वह वेदान्त तर्कोक्तियों वेदों नाना प्रकार के शास्त्र समूहों और ध्यानादि उपायों से नहीं प्राप्त होता, वह केवल चिन्तामणि सदृश गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है। तात्पर्य वह है कि विना गुरु के स्वयं शास्त्रपठन और ध्यानादि साधन नहीं करना चाहिये नहीं तो भटकना हो जाने का डर है।

मू०—सिद्धसिद्धान्तपद्धतौ—

शिवाद्भैरवः, भैरवाच्छ्रीकंठः श्रीकंठात्सदाशिवः सदाशिवा-दीश्वरः, ईश्वराद्रुद्रः, रुद्राद्विष्णुर्विष्णोर्ब्रह्मा इतिमहासाकारस्य-मूर्त्यष्टकम्। आचारेब्राह्मणा वसन्ति शौर्येक्षत्रियाः, व्यवसाये वै-

स्याः सेयामावे शुद्धाः ।

अनन्तभिन्नाभाति प्रकाशे । अभिन्नभिन्नपरमाऽद्वैतस्वभावः ।

स्मृत्यन्तरेति ।

शिवस्याऽभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरेशिवः ।
अन्तरंनैवजानीयाच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥
तज्ज्ञेयंसद्गुरोर्वक्त्रान्नान्यथाशास्त्रकोटिभिः ।
नतर्कशास्त्रविज्ञानाद्बलाद् वेदपाठनात् ॥
वेदान्त श्रवणाच्चैव तत्त्वमस्यादिबोधनात् ॥
देवार्चनाश्रयाद्भक्त्या नाश्रमाणांनपालनात् ॥
मत्स्योयोगीन्द्रकर्ता लीलयाचाऽजराऽमरः ।
भरणांडेषुदन्यानां कीटैर्भस्त्रोयथा ॥
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं शिवशासनतः शिवशासनतः ।
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं शिवशासनतः शिवशासनतः ॥
कल्याणलवपातेन छिन्नपाशाष्टकबन्धोः ।
परमानन्दजनकः सद्गुरुः सोऽभिधीयते ॥

पुनर्योगादिनानागमरहस्यानुमानानन्तरंमुद्रयाश्रमतोगुरु-
रूपताच्यः ।

स्वविश्रान्तिनजानाति परेषां स करोतिकिम् ।

भा०—सिद्धसिद्धान्त पद्धति में वर्णन किया गया है—शिव से भैरव भैरव से श्री कंठ श्री कंठ से सदा शिव सदा शिव से ईश्वर ईश्वर से रुद्र रुद्र से विष्णु विष्णु से ब्रह्मा ये महासाकार की आठ मूर्तियां हैं। आचार में ब्राह्मण शौर्य में क्षत्रिय व्यवसाय में वैश्य और सेवा भाव में शूद्र रहते हैं। अनन्त सिद्धज्ञान के प्रकाश में रहते हैं। परम अद्वैत का जो भाव है वही आत्मा है। शिव के अन्दर शक्ति और शक्ति के भीतर शिव चन्द्र और चांदनी के समान इन में कोई भेद नहीं है। यह तत्व सद्गुरु के वाक्य से ही जाना जाता है, अन्यथा करोडों शास्त्रों से भी नहीं। यह तत्व न ज्ञान तर्क न शब्द के ज्ञान न चार २ वेद पढ़ने न वेदान्त सुनने और न तत्त्वमसि ज्ञान से न देवार्चन से न भक्ति और न आश्रमों के पालन से प्राप्त होता है। किन्तु स्वयं अपने स्वरूप में स्थित योगी स्वयं ही अपने भाग्य का विधाता होता है, और अपनी लीला से वह अजर और अमर होता है, देव और दैत्य सब से अवध्य होता है। वह भैरव के समान खेलता है शिव जी का यह शासन है कि गुरु से बढ़कर संसार में अधिक कुछ भी नहीं है। जो अपनी दया के लेश से शिष्य को अर्थात् प्राणि की आठों पाशों को

काटकर उसे आनन्दित करता है वह सद्गुरु कहा जाता है। वह गुरुत्याज्य है जो नाना प्रकार के वचनों शास्त्रों के अनुमानों और तर्कों के झमेलों से शिष्य को भ्रम में डाल देता है। जिसका मन स्वयं विश्रान्त नहीं है वह दूसरों का क्या उपकार कर सकता है। क्या कहो शिलाओं से शिलाएं नदी के पार उतारी जा सकती है। जो स्वयं पार हो चुका है वही दूसरों को पार उतारने में समर्थ हो सकता है।

मू०—सर्वदर्शनानांस्वरूपदर्शनेनसमन्वयं करोति सोऽवधूत-योगीस्यात्।

शिलयाकिंपरंपारं शिलासंघः प्रतार्यते।
स्वयंतीर्णोभवेद्यस्तु परान्निस्तारयत्यलम्॥
अत्याश्रमीचयोगीच ज्ञानीसिद्धश्च सुव्रतः।
ईश्वरश्चतथास्वामी धन्यः श्रीसाधुरेवच॥
जितेन्द्रियश्चभगवान् ससुधीः कोविदोबुधः।
सर्वेषांदर्शनानां च स्वरूपंचप्रकाशयेत्॥
सर्वतोभरिताकारं निर्द्वंद्वंयेनसंहितम्।
चरतेब्रह्मणियस्तु ब्रह्मचारीसकथ्यते॥

भा०—स्व स्वरूप के अनुभव से जो सब दर्शनों को एकता कर लेता है वही वास्तव में अवधूत है। जो आश्रमों को पूर्ण

कर चुका है और जो योगी ज्ञानी सिद्ध समर्थ व्रतधारी इन्द्रियों का स्वामी परकार्य साधक षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्न है वही सुधी और वही सब दर्शनों के प्रकाशित करने का अधिकारी है। जो सर्वव्यापक संसार के रचयिता महान् ब्रह्म में विचरण करता है, वह ब्रह्मचारी कहाता है।

मू० गृहिणीपूर्णतानित्यं गेहंव्योमसदाचलम् ।
यस्तयानिवसत्यत्र गृहस्थः सोऽभिधीयते ॥
सदान्तः संस्थितोयोऽसौ स्वप्रकाशमयेवने ।
वानप्रस्थः सविज्ञेयो नवनेमृगवच्चरन् ॥
परमात्माचजीवात्मा चात्मन्येवस्फुरत्यलम् ।
तस्मिन्न्यस्तः सदायेन संन्यासीसोऽभिधीयते ॥
नवन्दनीयास्ते काष्ठा दर्शनभ्रान्तिकारकाः ।
वर्जयेत्तान्गुरून्दूराद् धीरः सिद्धमताश्रयः ॥

भा०—जो पूर्णतारूपी स्त्री के साथ और आकाश के समान सदा अचल ब्रह्मरूप घर में वास करता है वह वास्तविक गृहस्थ है।

जो स्वप्रकाश ज्ञानरूप वन में सदा रहता है वही असली वानप्रस्थ जानना चाहिये, नकि मृग की तरह जड़रूप जंगल में

विचरने वाला। सर्वज्ञतादिगुण विशिष्ट परमात्मा और राग द्वेषादिगुणयुक्त जीव जिस सच्चिदानन्द परमात्मा में प्रकाशित होते हैं, अर्थात् उसकी सत्ता से इनकी सत्ता है। उस ब्रह्म में जिसने सब कुछ छोड़ दिया वह संन्यासी है। जो नाना दर्शनों के जालों में लोगों को भरमाते रहते हैं उन पुरुषों की तो दिशाएं भी निन्दनीय हैं अर्थात् उधर भूल से भी गमन न करे अतः सिद्धमत का आश्रय करने वाले को उचित है कि ऐसे गुरुओं को त्याग दे।

मू०—पद्मपुराणेकपिलगीतायाम्—

दत्तात्रेयादिसिद्धानांनवनाथास्तथैवच।
शङ्करोगुरुरूपेणबोधितश्चात्मतत्त्वाभिः॥

ऋगवेदोऽथयजुर्वदः सामवेदोह्यथर्वणः।
सूक्ष्मवेदोहिअध्यद्यः पंचवेदाः प्रकीर्तिताः॥

ईश्वरउवाच—

ओंकारंविन्दुसंयुक्तं नित्यंध्यायन्तियोगिनः।
तस्मिन्मध्येस्थितंतत्वं प्रदर्शयतिसद्गुरुः॥

ओमित्येवंपरंब्रह्म सर्वतत्वानुदर्शनम्।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वानुग्रहकारकम् ॥
तारकंचभवेद्ब्रह्मा दण्डकंविष्णुरुच्यते ।
कुण्डल्यांहितथारुद्रोऽर्धचन्द्रः स ईश्वरः ॥
बिन्दुः सदाशिवः साक्षात् प्रणवेपंचदेवता ।
निरञ्जनस्तदतीत उत्पत्तिस्थितिकारणम् ॥
दुर्लभोविषयत्यागीदुर्लभंतत्त्वदर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥
विचारोदर्पणंयस्य अवलोकनमीप्सितम् ।
दृश्यतेतत्स्वरूपंच तत्रकंपृच्छकिंनहि ॥
हृदयंदर्पणंयस्य मनस्तत्रविलोकयेत् ।
दृश्यतेप्रतिबिम्बेनआत्मरूपंसुनिश्चितम् ॥

भा०—पद्म पुराण में कपिल गीता में वर्णन किया है—दत्तात्रेयादि सिद्धों के नवनाथ और शिवजी ये सब आत्म तत्त्व के लिये गुरु रूप से माने जाते हैं। ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद तथा इन सबका अध्यक्ष सूक्ष्मवेद ये पांचवेद कहे गए हैं। ईश्वर ने कहा— योगी लोग सदा बिन्दु संयुक्त ओंकार का ध्यान करते हैं। उस ओंकार में स्थित तत्त्व को

सद्गुरु प्रकाशित करता है। ओम् यह सम्पूर्ण तत्त्वों का दिखाने वाला ब्रह्म है। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सब जीवों पर दया करने वाला यही है। ओंकार में जो तारा है वह ब्रह्मा है दण्डक विष्णु है कुण्डली में रुद्र और अर्ध चन्द्र ईश्वर और बिन्दु सदा शिव है, इस प्रकार ओंकार में साक्षात् पांच देवता विराजमान हैं। उत्पत्ति स्थिति का कारण जो निरंजन है वह उससे परे है। विषयों का त्याग। तत्त्व दर्शन और स्वाभाविक अवस्था गुरु की कृपा के बिना दुर्लभ है। विचार जिस का दर्पण और यथार्थानुभव जिसकी दृष्टि है वहां वास्तविक स्वरूप दिखाई देता है यानी अपने आत्मा से पूछो कि क्या नहीं दीखता। हृदय जिसका दर्पण है अर्थात् योग से निर्मल होगया है वहां मन को देखे वहां निश्चय ही प्रतिबिम्ब से आत्मरूप दिखाई देता है।

मू०—अवधूतगीतायाम्—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सम्पूर्णंपरमात्मनि ।
भिन्नाभिन्नंनपश्यामि तस्याहंपंचमाश्रमी ॥
आशापाशविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तनिर्मलम् ।
अनन्तानन्दब्रह्मज्ञमकारंतस्यलक्षणम् ॥

वासनार्वाजितायेन वक्तव्यं चनिरामयम् ।
वर्तमानेषुवर्तेतवकारंतस्यलक्षणम् ॥
धूलिधूमरगात्राणि धूतचित्तं निरामयम् ।
ध्यानधारणनिर्मुक्तं धूकारं तस्यलक्षणम् ॥
तत्वचिन्तायेनधृता चिन्ताचेष्टाविवर्जिता ।
तमहंकारनिर्मुक्तं तकारं तस्यलक्षणम् ॥
शिवंनजानामिकथंवदामिशिवंचजानामिकथंवदामि ।
अहंशिवश्चेत्परमार्थरूपं स्वच्छस्वभावंगगनोपमंच ॥
वेदानलोकानसुरान यज्ञावर्णाश्रमोनोन कुलंनजातिः ।
नधूममार्गोनचदीप्तिमार्गो ब्रह्मैवरूपंपरमार्थतत्वम् ॥
व्याप्यव्यापकनिर्मुक्तं त्वमेकः सकलंयदि ।
प्रत्यक्षंचपरोक्षंच आत्मानंमन्यसेकथम् ॥
आदिमध्यान्तमुक्तोऽहं नवद्धोऽहंकदाचन ।
स्वभावनिर्मल· शुद्ध इतिमेनिश्चलामतिः ॥
नवद्धोनैवमुक्तोऽहं नचाहंब्रह्मणः पृथक् ।
नकर्तानैवभोक्ताहं व्याप्यव्यापकवर्जित ॥

नजातोऽहंमृतोवापि नमेकर्मशुभाशुभम् ।
शुद्धोऽहंनिर्गुणंब्रह्म बन्धमुक्तौकथंमम ।
यदिमर्वगतोदेवः स्थिरः पूर्णहृति शिव ।
भावगम्यंनिराकारं साकारंदृष्टिगोचरम् ।
भावाभावविनिर्मुक्तं मन्तरालंतदुच्यते ॥
साकारंचनिराकारं नेतिनेतीति सर्वथा ।
भेदाभेदविनिर्मुक्तं वर्ततेकेवलंशिव ॥
दिवानक्तंनतेचित्त उदयास्तमयौनहि ।
विदेहस्यशरीरित्वं कल्पयान्तिकथंबुधाः ॥
नतेचमातानपितानबन्धुर्नतेचपत्नीनसुहृन्नपुत्रः ।
नपक्षपातोनविपक्षपातः कथंहिमत्तासिरजोहिचेत. ॥
धर्मार्थकाममोक्षंच द्विपदादिचराचरम् ।
मन्यन्तेयोगिनः सर्वंमरीचिजलसन्निभम् ॥
विन्दतिविन्दतिनहिनहिमंत्रश्छन्दोलक्षणमिहनहितंत्रः ।
समरसमग्नोभावितपूतः प्रलपितमेतत्कथमवधूतः ॥
अद्वैतरूपमखिलंहिकथंवदामि-

नित्यंह्यनित्यमखिलंहिकथंवदामि ।
सत्यंह्यसत्यमखिलंचकथंवदामि-
ज्ञानामृतंसमरसंगगनोपमोऽहम् ॥
ब्रह्मादयः सुरगणाः कथमत्रसन्ति-
स्वर्गादयोवसतयः कथमत्रसन्ति ।
यद्येकरूपममलंपरमार्थतत्त्वं-
ज्ञानामृतंसमरसंगगनोपमोऽहम् ॥
मायाप्रपंचरचनानचमेविकारः
कौटिल्यदम्भरचनानचमेविकारः ।
सत्यानृतेतिरचनानचमेविकारः
ज्ञानामृतं समरसंगगनोपमोहम् ॥
नशून्यरूपनविशून्यरूपं-
नशुद्धरूपंनविशुद्धरूपम् ।
रूपंविरूपनभवामिकिंचित्-
स्वरूपरूपंपरमार्थतत्त्वम् ॥
नावाहनंनैवविसर्जनंच ।

पत्राणिपुष्पाणिकथंभवन्ति ।
ध्यानानिमंत्राश्चकथंभवन्ति-
समेसमेसर्वशिवार्चनंच ॥

मूर्खोपिनाहंनचपंडितोहं मौनंचवातांनचमेकदाचित् ।
वितर्कतर्कंचकथंवदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥
अस्तंगतोनैवसदोदितोऽहं तमश्चतेजोनचमेविभाति ।
संध्यादिकंकर्मकथंकरोमि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥
इह तत्त्वमासिप्रभृतिश्रुतिभिः प्रहितमात्मनि तत्त्वमसि ।
त्वमुपाधिविवर्जितसर्वसमं किमुरोदिपिमानससर्वसमम् ॥
नहिकल्पितभागाविभागइति नहिरागविरागविचारइति ।
पदसंधिविवर्जितसर्वसमः किमुरोदिपिमानस सर्वसमः ॥
अविवेकविवेकमबोधइति अविकल्पविकल्पाविबोधइति ।
यदिचैकनिरन्तरबोधइति किमुरोदिपिमानससर्वसमः ॥
बहुधाश्रुतयः प्रवदन्तियतो, विददातरयंमृगतोयसमः ।
यदिचैकनिरन्तरसर्वसमः किमुरोदिपिमानससर्व्वसमः ॥
सविभक्तिविभक्तिविहीनपरमणुकायाविकायविहीनपरम् ।

यदिचैकनिरन्तरसर्वशिवः यजनंचकथंतपनंचकथम् ॥
दिनरात्रिविभेदनिराकरणमुदितानुदितस्यनिराकरणम् ।
यदिचैकनिरन्तरसर्वशिवं रविचन्द्रमसौज्वलनंचकथम् ॥
तवचाश्रमवर्णविहीनपरो नतुकारणकर्तृविहीनपरः ।
यदिचैकनिरन्तरसर्वशिवं गुणदोषविचारवचांसिकथम् ॥

भा० टी०—अवधूत गीता में कहा है—

ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त समस्त जगत् को मैं अपने आत्मा में भिन्ना भिन्न विलक्षण रूप से देखता हूँ अर्थात् अहं भाव से अलग नहीं है इस लिए भेद नहीं कहा जाता देखा जाता है इस लिये अभेद भी नहीं होसकता विरोध होने से दोनों नहीं हो सकते इस लिये विलक्षण कहा गया है। मैं उस का द्रष्टा पञ्चमाश्रमी हूँ। आशा के पाशों से विमुक्त आदि मध्य और अन्त में निर्मल अनन्त आनन्द स्वरूप ब्रह्म के ज्ञाता का लक्षण अकार है।

जिसने वासनाओं को जीत लिया है और जिस की वाणी दोष रहित है, जो वर्तमान के अनुसार कार्य करता है यह वकार का लक्षण है । जिसका शरीर धूलि से लिपटा रहता है जिसने चित्त को विषयों से हटा कर पाप रहित कर लिया है जो ध्यान और धारणा में लगा रहता है यह धूकार का लक्षण

है। अर्थात् अर्थ है तत्व की चिन्तावस्था को जिस ने पार कर लिया है चिन्ता चेष्टा और अहंकार से जो मुक्त है यह सकार का अर्थ है।

मैं शिव को नहीं जानता यह कैसे कहूं और जानता है यह भी कैसे कहूं। मैं यदि परमार्थ रूप से स्वच्छ स्वभाव आकाश के समान व्यापक शिव हूं तो मेरे लिए न वेद न लोक न देव न यज्ञ न वर्णाश्रम न कुल और न जाति है। न स्वर्ग ले जाने वाला धूम मार्ग न सत्य लोक ले जाने वाला प्रकाश मान अर्चिरादि मार्ग है, मैं तो परमार्थ तत्त्व रूप केवल ब्रह्म हूं। व्याप्य व्यापक भाव से रहित यदि तू सब कुछ केवल एक प्रत्यक्ष है तो फिर अपने आपको परोक्ष क्यों समझता है। मैं आदि मध्य और अन्त से रहित हूं, मैं कभी बद्ध नहीं हूं। मैं स्वभाव से निर्मल और शुद्ध हूं यह मेरा अटल निश्चय है।

जब मैं बद्ध नही हूं तो मैं मुक्त कैसे कहा जासकता हूं क्योंकि बँधा हुआ ही बंध से छूट कर मुक्त होता है। मैं ब्रह्म से पृथक नहीं हूं। न मैं कर्ता और न भोक्ता हूं मैं तो व्याप्य व्यापक भाव से भी रहित हूँ। न मैं पैदा हुआ न कभी मरा न ही मेरा कोई शुभाशुभ कर्म है। मैं तो शुद्ध निर्गुण ब्रह्म हूं बंध और मोक्ष मेरे हो ही कैसे सकते हैं, जब कि देव अर्थात् ब्रह्म

सर्व व्यापक स्थिर और पूर्ण है। जो मात्र गम्य है वह निरा-कार है और जो दृष्टि गोचर है। वह साकार है और जो भावा भाव से रहित है वह अन्तराल कहलाता है न वह साकार है न निराकार वह तो सर्वथा भेदा भेद से रहित केवल शिव उस चिद्रूप का न उदय है न अस्त न दिन न रात उस देह रहित के शरीर की कल्पना पंडित कैसे कर लेते है।

धर्मार्थ काम मोक्ष और मनुष्यादि चराचर जगत् को योगी लोग मृग तृष्णा में जल के समान जानते हैं। मंत्र छन्द और तंत्र ये सब अवधूत का लक्षण नहीं प्राप्त कर सकते अर्थात् नहीं बता सकते। वह समरस ॥ मग्न है वह भावना भावित और पवित्र होता है ऐसा लक्षण भी प्रलापमात्र है वह अद्वैत पूर्ण है वह कैसे कहू वह नित्य या अनित्य है यह भी कैसे कहूं वह सम्पूर्ण सत्य या असत्य है यह कैसे कहूं क्योंकि वह तो सर्व व्यापक मेरा रूप हैं। ब्रह्मा आदि देवता तथा स्वर्गादि वस्तियाँ यहां कहां हैं जब कि मैं एक रूप निर्मल परमार्थ तत्त्व ज्ञानामृत आकाश के समान एक रस हूं। माया की प्रपंच रचना मेरा विकार नहीं है कुटिलता और पाखण्ड भी मेरा विकार नहीं है। सच और झूठ की रचना मेरा विकार नहीं है क्योंकि मैं तो एक रस आकाश के समान व्यापक हूं। न मैं शून्य रूप न भाव रूप न शुद्ध रूप और न मैं अशुद्ध रूप

हूं न मैं रूप रहित और न रूपवान हूं, मैं तो परमार्थ तत्व वास्तविक निज रूप हूं। मेरा आवाहन और विसर्जन नहीं हो सकता पत्र और पुष्पों की तो बात ही क्या है ध्यान और मंत्र भी कैसे हो सकता है। सर्वत्र समरूप सर्वजगत ही शिव पूजा है मैं मूर्ख नहीं मैं पण्डित नहीं मेरे अन्दर चुप रहना और वार्तालाप भी सम्भव नहीं है? संशय और को भी मैं नहीं कह सकता ? मैं दुःख शून्य निज स्वरूप में मग्न रहने वाला हूं। मैं कभी अस्त नहीं होता सदा उदित ही रहता हूं, तुझ में अन्धकार का लेश नहीं है मैं तो सदा तेज स्वरूप प्रकाश मान हूं। मैं सन्ध्या आदि कर्म कैसे करूं मैं तो अपने रूप में मग्न और आनन्द रूप हूं। 'तत्वमसि' आदि श्रुतियों में जो वर्णन किया गया है वह आत्मा तू है तू सब उपाधियों से रहित समान रूप से व्यापक है अतः हे आत्मा तू क्यों दुःखी हो रहा है। तुझ में कल्पित भाग और विभाग नहीं है तुझ में राग विराग का विचार भी नहीं है तू तो पद और सन्धि से रहित समान रूप से सर्व व्यापक है अतः क्यों दुःखी होता है। तू अविवेक का विवेक और अज्ञेय है विकल्प रहित और विकल्प का कारण तथा ज्ञान स्वरूप है यदि तू एक निरन्तर और बोध रूप है तो क्यों तू मन के दुःखों को अपने में आरोपित करके दुःखी होता है। प्रायः श्रुतियां

कहती हैं कि यह जगत् मृग तृष्णा के समान है और तू एक निरन्तर और सर्व व्यापक है, तो क्यों दुःखी हो रहा है। तू विभाग और अविभागपन से रहित है अणु रूप निराकार और सब से परे है और यदि तू एक निरन्तर और सदा शिव रूप है तो यज्ञ करना और स्तुति ये कैसे हो सकते हैं। दिन और रात का तुझ में अभाव है, उदय और अस्त भी तेरे में नहीं हैं यदि तू एक निरन्तर और शिवरूप है तो तुझ में सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश क्या अर्थ रखता है। तेरा रूप आश्रम और वर्ण से विहीन और सब से परे है, तू जगत् का कारण और कर्ता तथा सब से परे वर्तमान है, यदि तू एक निरन्तर और सर्वदा कल्याण रूप है तो तुझ में गुण दोष के वचन कैसे घट सकते हैं।

मू० हठयोगप्रदीपिकायाम्—

क्रियायुक्तस्यसिद्धिः स्यादक्रियस्य कथंभवेत् ।
नशास्त्रपाठमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते ॥
वर्जयेद्दुर्जनप्रीतिं वह्निस्त्रीपथिसेवनम् ।
प्रातःस्नानोपचारादि कायक्लेशादिकंतथा ॥
चलेवातेचलंचित्तं निश्चलेनिश्चलंतथा ।

योगिस्थासुखमाप्नोति ततोवायुंनिरोधयेत् ॥
ब्रह्मादयोऽपित्रिदशाः पवनाभ्यासतत्पराः ।
तेनसिद्धिंगतास्ते च तस्मात्पवनमभ्यसेत् ॥
यावद्देहेमरुद्बद्धस्तावच्चित्तनिरामयम् ।
यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्येतावत्कालभयंकुतः ॥
कलांपरांमुखीकृत्य त्रिपथेपरिवर्तयेत् ।
साभवेत्खेचरीमुद्रा व्योमचक्रंतदुच्यते ॥
एकंसृष्टिमयंबीजमेकामुद्राचखेचरी ।
एकोदेवोनिरालम्ब श्चैकावस्थामनोन्मनी ॥
सुचिरंज्ञानजनकं पञ्चस्रोतः समन्वितम् ।
तिष्ठतिखेचरीमुद्रा तस्मिन्शून्येनिरञ्जने ॥
अयंयोगःपुण्यवतां धन्यानांतत्त्वशालिनाम् ।
निर्मत्सराणांसिद्ध्येतनतुमत्सरशालिनाम् ॥
राजयोगस्यमाहात्म्यं कोवाजानातितत्त्ववित् ।
ज्ञानान्मुक्तिःस्थितिःसिद्धा गुरुवाक्येनलभ्यते ॥
अन्तर्लक्ष्यविलीनचित्तपवनोयोगीयदावर्तते ।
दृष्ट्यानिश्चलतारयाबहिरसौपश्यन्नपश्यन्नपि ।

मुद्रेयंखलुशाम्भवीभवतिसायुष्मत्प्रसादाद्गुरो ?
शून्याशून्यविवर्जितंस्फुरतियत्तत्त्वंपदंशाम्भवम् ॥
अर्धोद्घाटितलोचनःस्थिरमनानासाग्रदत्तेक्षण
चन्द्रार्कावपिलीनतामुपनयन्निस्पन्दभावान्तरे ।
ज्योतीरूपमशेष बाह्यरहितंदेदीप्यमानंपरं
तत्त्वंतत्पदमेतिवस्तुपरमंवाच्यंकिमत्राधिकम् ।
चित्तंचरतिखेयस्माज्जिह्वाचरतिखेगता ।
तेनैनखेचरीनाम मुद्रासिद्धैर्नमस्कृता ॥
सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये निरालम्बेऽनिलेपुनः ।
संस्थिताव्योमचक्रेयासामुद्रानामखेचरी ॥
निरालम्बमनःकृत्वा नकिंचिदपिचिन्तयेत् ।
सबाह्याऽभ्यन्तरे व्योम्नि घटवत्तिष्ठतिध्रुवम् ॥

भा०—हठयोगप्रदीपिका में भी लिखा है—जो योगी क्रिया से युक्त है उसको सिद्धि प्राप्त होती है, क्रिया रहित को नहीं। केवल शास्त्र के पाठमात्र से तो सिद्धि हो ही नहीं सकता।

दुर्जन की प्रीति, अग्नि, स्त्री और बाट चलना छोड़दे, और शरीर को कष्ट पहुंचाने वाले प्रातः स्नानादि भी छोड़ दे।

जब वायु चल होता है तो मन भी चञ्चल होजाता है, जिस समय वायु निश्चल रहता है तो मन भी शान्त होजाता है। योगी निश्चल भाव को प्राप्त हो जाता है इसीलिये वायु को रोके। ब्रह्मा आदि देवता भी प्राणायाम के अभ्यास में तत्पर रहते हैं इसी से वे सिद्धि को प्राप्त हुए हैं अतः प्राणायाम का अभ्यास करे। जब तक शरीर में वायु बंधा हुआ है अर्थात् निश्चल है तभी तक मन निर्विकार रहता है। जब तक योगी अपने ललाट में दृष्टि जमाए रहता है तब तक काल का भय होही कैसे सकता है। जिह्वा को पराङ्मुखी करके अर्थात् पश्चिम को लौटा कर तीनों नाड़ियों का मार्ग जो कपाल का छिद्र है उसमें लगा दे वही खेचरी मुद्रा होती है और उस को ही व्योमचक्र कहते हैं। सृष्टिमयबीज एक है, खेचरीमुद्रा भी एक है निरालम्ब एक ही देव है और मनोन्मनी अवस्था भी एक ही है अर्थात् सृष्टिमयबीज सब बीजों में खेचरी मुद्रा सब मुद्राओं में निरालम्ब देव सब देवों में और मनोन्मनी अवस्था सब अवस्थाओं में उत्तम है।

यह योग ईर्ष्या और अभिमान् शून्य भाग्यवान् और तत्त्वज्ञानियों को सिद्ध होता है। अभिमानी और ईर्ष्यालुओं को नहीं। राजयोग के माहात्म्य को कोई तत्त्वज्ञानी ही जानता है। ज्ञान से मुक्त अवस्था में स्थिति सिद्ध हो जाती है और वह

ज्ञान गुरुवाक्य से प्राप्त होता है । भीतर अनाहत चक्रादि में जो दृश्यमान ईश्वर की मूर्ति आदि है उसमें जिसका चित्त और पवन विलीन हो गये हैं, ऐसी अवस्था में जब योगी वर्तमान होता है और जब स्थिरतारायकी दृष्टि से बाहर देखता हुआ भी नहीं देखता यह शाम्भवी मुद्रा गुरु की कृपा से प्राप्त होती है इस अवस्था में शून्य और अशून्य से विलक्षण तत्व प्रकाशित होता है। जब योगी की आँखें आधो खुली रहती हैं मन स्थिर हो जाता है, दृष्टि भी नासाग्र पर स्थिर हो जाती है और जब चन्द्र सूर्य को स्पन्द रहित भाव में लीन कर देता है तब उसे अशेष बाह्य से विहीन प्रकाशमान परमतत्व प्राप्त होता है। इस विषय में और अधिक क्या कहें। चित्त आकाश में विचरता है और खेचरी मुद्रा उसे वहां प्राप्त होकर वशीभूत करती है अतः खेचरी मुद्रा सब सिद्धों से पूजी गई है। सूर्य और चन्द्र के मध्य निरालम्ब वायु में और व्योम चक्र में स्थित होने के कारण इस मुद्रा को खेचरी मुद्रा कहते हैं। मन को अवलम्बन रहित करले और कुछ भी न सोचे वह भीतरी और बाहरी आकाश में अवश्य घट के समान स्थित होता है।

मू०—अथारम्भावस्था।

ब्रह्मग्रन्थिर्भवेद्भिन्न आनन्दः शून्यसम्भवः।

विचित्रक्वणकोदेहेऽनाहतः श्रूयतेध्वनिः ॥

दिव्यगन्धोदिव्यचक्षुस्तेजस्वीस्यादरोगवान् ।

सम्पूर्णहृदयः शून्य आरम्भोयोगवान्भवेत् ॥

भा०—आरम्भावस्था में ब्रह्मग्रन्थि खुल जाती है फिर शून्य में उत्पन्न हुई विचित्र अनाहत ध्वनि सुनाई देती है जिस योगी को अलौकिक गन्ध और दृष्टि प्राप्त होजाती है। वह तेजस्वी रोग रहित और सम्पूर्ण हृदय वाला होजाता है तब समझले कि योग का आरम्भ होगया।

मू०—अथघटावस्था—

द्वितीयायांघटीकृत्य वायुर्भवतिमध्यगः ।

दृढासनोभवेद्योगी ज्ञानीदेवसमस्तथा ॥

विष्णुग्रन्थिर्यदाभिन्नः परमानन्दसूचकः ।

अतिशून्यविभेदश्च भेरीशब्दस्तथाभवेत् ॥

भा०—जब दूसरी अवस्था में घटित हो जाता है तब, उसके मध्य में वायु बहने लगता है तब योगी का आसन दृढ़ होजाता है और देवों के समान ज्ञानी हो जाता है जब विष्णु ग्रन्थि खुलजाती है अति शून्य का भेद हो जाता है तब परमानन्द सूचक भेरी का शब्द होने लगता है।

मू०—अथ परिचयावस्था—

तृतीयायांततोभित्त्वा विहायोमर्दलध्वनिः ।
महाशून्यंतथायाति सर्वसिद्धिसमाश्रयम् ॥
चित्तानन्दंततोजित्वा सहजानन्दसम्भवः ।
दोषदुःखक्षुधानिद्रा जरामृत्युविवर्जितः ॥
रुद्रग्रन्थिततोभित्वा सर्वपीठगतोऽनिलः ।

भा०—जब तीसरी अवस्था में पहुंचता है तब आकाश में डमरु की ध्वनि सुनाई देती है और सब सिद्धियों के आश्रय भूत महाशून्य को प्राप्त होता है। तब चित्तानन्द को जीतकर स्वाभाविक आनन्द को प्राप्त होता है तब योगी सब प्रकार के दोष क्षुधा निद्रा बुढ़ापा और मृत्यु को भी जीत लेता है। तब वायु रुद्र ग्रन्थी को तोड़ कर सब चक्र स्थानों में पहुंच जाता है।

मू०—अथनिष्पत्त्यवस्था—

निष्पत्तौवैष्णवः शब्दः क्वणद्वीणा क्वणोभवेत् ।
अस्तुवामास्तुवामुक्तिरजैवाखण्डितं महत् ॥
लयामृतमिदं सौख्यं राजयोगादवाप्यते ।
राजयोगपदं प्राप्तं सुखोपायं सुचेतसाम् ॥

नादानुसंधानसमाधिभाजां योगीश्वराणांहृदयेप्ररूढम् ।
आनन्दमेकंवचसामवाच्यं जानातितं श्रीगुरुनाथएव ॥

नादकोटिसहस्राणि बिन्दुकोटिशतानि च ।
सर्वेतत्रलयं यान्ति यत्रदेवोनिरञ्जनः ॥
योगिनांज्ञानविदुषामन्येषांच महात्मनाम् ।
प्राप्तं तं कालपुरुषं सुविज्ञाप्यं विचक्षणैः ॥
यावन्नैवप्रविशति मरुद् विज्रारोमध्यमार्गे ।
यावद्बिन्दुर्नभवतिदृढः प्राणवत्सुप्रबुद्धः ॥
यावद्व्योम्नः सहजसदृशं जायतेनैवतत्त्वम् ।
तावत्सर्वं वदतियदिदं दम्भमिथ्याप्रलापः ॥

भा०—निद्रावस्था में बांसुरीका सा शब्द और बजती हुई सितार जैसा शब्द होता है, अब मुक्ति हो या न हो यहां पर हो महत् अखण्डित आनन्दस्वरूप होजाता है । यह सुखप्रद लयरूपी अमृत राजयोग से प्राप्त होता है राजयोग पद की प्राप्ति बुद्धि मानों के लिए सुख का उपाय है। नादानुसंधान समाधि को प्राप्त होने वाले योगीश्वरों के हृदय में जो आनन्द उत्पन्न होता है वह वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता उसको तो केवल श्रीगुरु

गोरक्षनाथ जी ही जानते हैं। सहस्रों नाद कोटियां और सैंकड़ों विन्दु कोटियां ये सब निरंजन देव में लय को प्राप्त होती हैं। योगियों तथा अन्य ज्ञानी महात्माओं को जो काल पुरुष प्राप्त होता है वही बुद्धिमानों को जानना चाहिए। जब तक वायु सुख पूर्वक मध्यमार्ग में प्रविष्ट नहीं होता और जब तक प्राण के समान ज्ञान पूर्वक विन्दु दृढ़ नहीं होता और जब तक आकाश के समान स्वाभाविक तत्त्व नहीं प्राप्त होता तब तक जो कुछ कहा जाता है वह दम्भ और मिथ्या प्रलाप है।

मू०—हठ प्रदीपिकायाम्—दशमोपदेशे—

आदिनाथोदितं सर्वमष्टैश्वर्य प्रदायकम्।
वल्लभंसर्वसिद्धानां दुर्लभंमहतामपि॥
पीड्यतेनतुरोगेण नचलिप्येतकर्मणा।
बाध्यते नचकालेन योमुद्रांवेत्तिखेचरीम्॥

ऊर्ध्वषोडशपत्रपद्मगलितं प्राणादवाप्तंहठात्।
ऊर्ध्वास्योरसनांनियम्यविवरे शक्तिंपरांचिन्तयेत्॥
उत्कल्लोलकलाजलंच विमलंधारामृतंयः पिबेद्।
निर्दोषः समृणालकोमलवपुर्योगीपरंजीवति॥
यत्प्रालेयंप्रहितसुषिरं मेरुमूर्धान्तरस्थं।

तस्मिंस्तत्त्वप्रवदतिसुधीस्तन्मुखं निम्नगानाम् ॥
चन्द्रात्सारः स्रवतिवपुषस्तेन मृत्युर्नराणाम् ।
तंबध्नीयात्सुकरणमथो नान्यथाकायसिद्धिः ॥
यद्वं मूलविलंयेन तेनविघ्नोविदारितः ।
अजरामरतांयाति यथा पंचमुखोहरः ॥
तत्रास्तिकरणं दिव्यं सूर्यस्यमुखवंचनम् ।
गुरूपदेशतोज्ञेयं नतुशास्त्रार्थकोटिभिः ॥
येनसंचालिताशक्तिः सयोगीसिद्धिभाजनम् ।
किमत्रबहुनोक्तेन कालंजयतिलीलया ॥
ध्यानंकुतोमनसिसम्भवतीहतावत्
प्राणोपिजीवतिमनोम्रियतेनयावत् ।
प्राणोमनोद्वयमिदंविलयंनयेद्योमोक्षं
सगच्छतिनरोनकथंचिदन्यः ॥
इन्द्रियाणां मनोनाथो मनोनाथश्चमारुतः ।
मारुतस्यलयोनाथः सलयोनादमाश्रितः ॥
अन्तर्लक्ष्यं वहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता ।

एषासाशाम्भवीमुद्राः सर्वतन्त्रेषुगोपिता ॥

शक्तिमध्येमनः कृत्वा शक्तिंमनसिमध्यतः ।

मनसामनआलोक्य धारयेत्परमं पदम् ॥

अन्तः शून्यो बहिः शून्यः शून्यकुम्भइवाऽम्बरे ।

अन्तः पूर्णो बहिः पूर्णः पूर्णकुम्भइवाम्भसि ॥

संकल्पमात्रकलनैव जगत् समग्रं,

संकल्पमात्रकलनोहिमनो विलासः ।

संकल्पमात्रकलनैयकृतिस्तुतिस्या,

संकल्पनिश्चयमवाप्नुहिचात्मशान्तिः ॥

ध्येयं सर्वमतीतंच ध्यानं च मन उच्यते ।

ध्यानं ध्येयं मनश्चैव नान्यः पंथाद्वितीयकः ॥

श्रीआदिनाथेन सपादकोटिलयप्रकाराः कथिताजयन्ति ।

नादानुसन्धायकमेकनान्यं मन्यामहे धन्यतमं लयानाम् ॥

मनः स्थैर्येस्थिरोवायुस्ततोबिन्दुः स्थिरोभवेत् ।

बिन्दुस्थैर्येसदायत्वं पिण्डस्थैर्यं प्रजायते ॥

न्यासतः शुद्धमआत्मा निर्द्वन्द्वोविजितेन्द्रियः ।

कुरुते युक्तकर्माणि नित्यनैमित्तिकानिच ॥
योगेनपद्मात्मानं गुहायां प्राप्यचेतसा ।
तारकंजपतेनित्यं जितायुः कामवर्जितः ॥
युक्तासनेनसमारुह्य समकायशिरोधरः ।
नासाग्रदृष्टिरेकाकी जपेदोंकारमक्षरम् ॥

तदुक्तंश्रीगोरक्षपद्धतौ

भूर्भुवः स्वरिमेलोकाश्चन्द्रसूर्याग्निदेवताः ।
यस्यमात्रासुतिष्ठन्ति तत्परं ज्योतिरोमिति ॥
त्रयः कालास्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयोऽग्नयः ।
त्रयो लोकाः स्थितायत्र तत्परंज्योतिरोमिति ॥
इच्छा क्रियातथाज्ञानं ब्राह्मीरौद्रीच वैष्णवी ।
त्रिधाशक्तिः स्थिता यत्र तत्परंज्योतिरोमिति ॥
वचसा चजपेद्विद्वांश्चक्षुपाचसमभ्यसेत् ।
मनसासंस्मरेन्नित्यं तत्परंज्योतिरोमिति ॥
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि योजयेत्प्रणवंसदा ।
नसालिप्यतेपापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

शरीरंनोत्यजेदेव कालःकस्यापिकुत्रचित् ।
अन्तः शरीररचार्थं यत्नः कार्यस्तुयोगिना ॥
ततोलक्ष्यमनोऽभ्यासमहं भावविवर्जितम् ।
सर्वाङ्गकल्पनाहीनं कथंकालोजयेत्सुतम् ॥
स एवकालः स शिवः स सर्वोनापिकिञ्चनः ।
कः केनहन्यतेतत्र म्रियते वापिकश्चन ॥
ततोव्यतीतिसमये कालस्य भ्रान्तिरूपतः ।
योगीसुप्तोत्थित इव बोधयाति निरोधतः ॥
एवंसिद्धोभवेद् योगी वञ्चयित्वाविधानतः ।
कालकलित संसारं पौरुषेणाद्भुतेन च ॥
तत्रापिभुवनेयोगी विरहत्येक एव सः ।
पश्यन् संसार वैचित्र्यं स्वच्छयानिरहंकृतिः ॥
द्वाराणा नवकंनिरुध्यमरुतपीत्वा दृढधारितम् ।
नीत्वाकाशमपातवह्नि सहितं शक्त्यासमुज्ज्वलितम् ।
आत्मध्यानयुतस्त्वनेनविधिना विन्यस्यमूर्ध्निध्रुवम् ।
यावत्तिष्ठतितावदेवमरुतां सङ्घेन संस्तूयते ॥
दृष्टिःस्थिरा यस्यविनापिदृश्यंवायुःस्थिरोयस्यविनाप्रयत्नं

चित्तंस्थिरंयस्यविनाऽवलम्बं स एवयोगी सगुरुः स सेव्यः ॥

गोरक्षोपनिषदि— आदौदेवोमहानन्दो निर्ममदेवतास्वयम्।

तस्मादिच्छा सुसम्पन्नाइच्छाज्ञानंततःक्रिया ॥

ततोव्यथांवरारोहेपिण्डब्रह्माण्डबुद्बुदम्।

अव्यक्तव्यक्तभावेन विचरामिजगत्त्रयम् ॥

भा—हठप्रदीपिका के दशवें उपदेश में कहा है—आदि नाथ जी का बतलाया हुआ योगमार्ग अष्टसिद्धियों के देने वाला है यह मार्ग सिद्ध महापुरुष के लिए भी दुर्लभ है इस लिये सब के लिये उत्तम है। जो खेचरीमुद्रा को जानता है वह रोग से पीडित कर्मों से लिप्त और काल से भी अवध्य होता है। सोलहपत्रों वाले कंठस्थित पद्म में चन्द्रमण्डल से गिरते हुए फेन के समान श्वेत चन्द्रकिरण के समान स्वच्छ अमृत जल का ब्रह्मरन्ध्र में जिह्वा का प्रवेश करके खेचरी मुद्रा के द्वारा पान करे,उस योगी का शरीर मृणाल के समान कोमल और निर्दोष हो जाता है। और वह चिरकाल तक जीवित रहता है। मेरु पर्वत के समान सब से ऊंची सुषुम्णा के ऊपर भाग में जो सुराख है। उस में सोमकला जल रहता है उसी को शुद्ध हृदय विद्वान् आत्म तत्त्व अर्थात् परमात्मा का अभिव्यक्ति स्थान

और जीवों की जीवन शक्ति कहते हैं। उसी के समीप नीचे इड़ा पिङ्गला आदि नाड़ियों का मुख है, उस में देह का सार भार अमृत विन्दु चन्द्रमण्डल अर्थात् मस्तक के बीच ऊपर भाग में स्थित दिमाक से टपकता रहता है। इस कारण मनुष्यों की मृत्यु होती है। अतः उसको रोकने वाली खेचरी मुद्रा को बांधे और तरह से शरीर की सिद्धि नहीं होसकती।

जिसने इस मूल बिल को पायलिया है उसने विघ्नों को नष्ट कर दिया और वह देवाधि देव के समान अजर अमर हो जाता है। यहां मूल बिल में नाभि स्थित जठराग्नि रूप सूर्य के मुख को वञ्चित करने वाली खेचरी मुद्रा है जो गुरु के उपदेश से जानी जाती है करोड़ों शास्त्रों से नहीं। जिसने शक्ति को सञ्चालित किया है वह योगी सिद्धि को प्राप्त कर सकता है अधिक क्या कहें वह सुगमता से काल को जीत सकता है।

मन और प्राण का स्वाभाविक व्यापार जब तक नहीं रुकता तब तक ज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है। प्राण और मन को जो विलीन करदे वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं इन्द्रियों का स्वामी मन है और मन का स्वामी प्राण है प्राण का स्वामी लय है और वह नाद में आश्रित है।

भीतर की ओर लक्ष्य हो और निर्निमेष दृष्टि बाहर की तरफ हो यह सब तंत्रों में गुप्त रखने योग्य शाम्भवी मुद्रा है। शक्ति के बीच मन को और मन के बीच शक्ति को करके मन से मन को देख कर परम पद को सिद्ध करे। भीतर और बाहर से शून्य आकाश में स्थित शून्य घट के समान भीतर से पूर्ण और बाहर से पूर्ण जल में भरे हुए घड़े के समान योगी की अवस्था होती है। यह समस्त जगत् संकल्प मात्र और मन का खेल है, यह नित्य की कृति भी संकल्प मात्र ही है, इस लिये हे योगी तू एक आत्मा में तन के संकल्प का निश्चय कर यही आत्म शान्ति है। सम्पूर्ण भूत ज्ञेय और ज्ञान मन ही कहलाते हैं और दूसरा कोई मार्ग नहीं है, श्री आदिनाथ जी ने मन को लय करने की सवा करोड़ रीतियाँ कही हैं। परन्तु हम तो नादानुसंधान को ही लय का सर्वोत्तम साधन कहते हैं, अन्य किसी को नहीं, मन के स्थिर होने से वायु स्थिर होता है, वायु के स्थिर होने से बिन्दु स्थिर होता है बिन्दु की स्थिरता से यह शरीर सच मुच स्थिर हो जाता है। मन से सब, संकल्पों को छोड़ कर जितेन्द्रिय होकर योगी सब नित्य नैमित्तिक कर्मों को योग पूर्वक करता है। योग से हृदय गुहा में आत्मपद को प्राप्त कर के

निष्कामभाव से आयु को जीत कर तारक का नित्य जप करता है। युक्तासन से बैठ कर सिर गर्दन और काया को एक सीध में करके एकाकी नाक के अग्रभाग में दृष्टि टिका कर एकाग्र मन से ओंकार को जपे। जिस ओंकार को मात्राओं में भूः स्वः ये तीनों लोक सूर्यचन्द्र और अग्नि ये तीन, इनके देवता स्थित हैं, ओंकार यह सर्वोत्तम प्रकाश है। ओंकार वह परम प्रकाश है जिस में तीनों काल तीनों वेद तीनों अग्नि और तीनों लोक स्थित हैं। इच्छा क्रिया और ज्ञान ये तीन प्रकार की ब्राह्मी रौद्री और वैष्णवी शक्तियां जिस में तीन प्रकार से स्थित हैं वह परम ज्योति ओंकार है।

ज्ञानवान् योगी वाणी से ऊपर परम ज्योति ओंकार को जपे, नेत्र से उसका अभ्यास करे और मन से उसका स्मरण करे पवित्र या अपवित्र किसी अवस्था में भी जगत् के सर्व कारण ओंकार में मन लगाने वाला योगी पाप से लिप्त नहीं होता। काल किसी के भी शरीर को कहीं भी नहीं छोडता इस लिये योगी को नित्य शरीर रक्षार्थ यत्न करना चाहिये। जो मन को लक्ष्य पर एकाग्र किये हुए अहंकार से रहित और सर्व कल्पनाओं से शून्य है उसको काल कैसे जीत सकता है जब वही काल वही शिव और वही सब कुछ है तब फिर कौन किस को करता है और कौन मरता है। तब समय के बीतने पर काल की भ्रान्ति से गुरु के उपदेश द्वारा सोकर उठे हुये के

समान ज्ञान को प्राप्त होना है। इस प्रकार संसार को नष्ट करने वाले काल को अपने अद्भुत पौरुष और गुरु के उपदेश द्वारा काल को ठग कर सिद्ध होजाता है। वहां अपने भवन में संसार की विचित्रता को देखता हुआ अहंकार रहित होकर स्वेच्छा से विहार करता है। नवों इन्द्रिय द्वारों को रोक कर कुम्भक करके प्राणों को निश्चलता के साथ मस्तिष्क के आकाश में ऐसी रीति से कि वह न नीचे को गिरे और न उस में उष्णता आवे पहुंचाकर परा शक्ति की उमंग से परिपूर्ण और परमात्मा के ध्यान में मग्न होकर जितनी देर बैठता है उतनी देर देवता लोग भी उसकी स्तुति करते हैं। जिसकी दृष्टि बिना दृश्य के वायु बिना प्रयत्न के और चित्त बिना अवलम्ब के स्थिर है वही योगी है वही गुरु है और वही सेवा के योग्य है।

गोरक्षोपनिषद् में कहा है कि आदि में महानन्द देव ने स्वयं देवता को उत्पन्न किया, उससे इच्छा उत्पन्न हुई उससे ज्ञान और ज्ञान से क्रिया क्रिया से कष्ट और है वरारोहे! उससे बुलबुले के समान स्थूल शरीर और ब्रह्माण्ड पैदा हुआ, और अतः मैं गोरक्षनाथ व्यक्ताव्यक्त भाव से तीनों लोकों में भ्रमण करता हूं

मू०—एवं श्रीगुरुरादिनाथः। मत्स्येन्द्रनाथः। उदयनाथः।

यत्पीयूषवकारबीज सहितं युक्तंसदाविष्णुना ॥
प्राणंतत्रविलीय पंचघटिकंचित्तान्वितंधारयेन् ।
एषादुःसहकालकूट जरणा स्याद्वारुणीधारणा ॥
यत्तालुस्थितमिन्द्रगोपसदृशं तत्त्वंत्रिकोणंज्वलद् ।
तेजोरेफयुतं प्रवालरुचिरं रुद्रेणयत् संगतम् ॥
प्राणं तत्रविलीयपंचघटिकं चित्तान्वितंधारयेत् ।
एषावह्निजयं सदाविदधतीवैश्वानरीधारणा ॥
यद्भिन्नाञ्जनपुंजसन्निभमिदं धूम्रं भ्रुवोरन्तरे ।
तत्त्वं वायुमयंयकारसहितं तत्रेश्वरोदेवता ॥
प्राणंतत्रविलीयपंचघटिकं चित्तान्वितं धारयेत् ।
एषाखेगमिनं करोतियमिनां स्याद्वायवीधारणा ॥
आकाशंसुविशुद्धवारिसदृशं यद्ब्रह्मरन्ध्रेस्थितम् ।
यन्नाथेनसदाशिवेनसहितं शान्तंहकाराक्षरम् ॥
प्राणंतत्रविलीयपंचघटिकं चित्तान्वितंधारयेत् ।
एषामोक्षकपाटपाटनपटुः प्रोक्तानभोधारणा ॥
स्नानंतेनमहसतीर्थसलिलेदत्तं द्विजभ्योधनम् ।

यज्ञानांचकृतं सहस्रमयुतं देवाश्चसंपूजिताः ॥
सत्यंतेनसुतर्पिताश्चपितरः स्वर्गेचनीताः पुनः ।
यस्यब्रह्मविचारणेक्षणमपि प्राप्नोतिधैर्यंमनः ॥

भा०—इस प्रकार सब से प्रथम श्री गुरु आदिनाथ १ श्री मत्स्येन्द्रनाथ २ उदयनाथ ३ दण्डनाथ ४ सत्यनाथ ५ सन्तोषनाथ ६ कूर्मनाथ ७ भवनाञ्जिनाथ ८ सूक्ष्मवेदी अद्वैत के ऊपर सदानन्द देवता समस्त सिद्ध मण्डलाधिपति सर्वादि ब्रह्मवेत्ता शिवावतार श्री गोरक्षनाथ जी ९। अनाहत शृङ्गी खेचरी मुद्रा अर्थात् नादलय होने पर जो अनहद नाद सुनाई देता है वही इनकी शृङ्गी,और खेचरी मुद्रा ही मुद्रा है विवेक मार्तण्ड में कहा है—जो योगी देह के भीतर निश्चलदीप शिखा के समान तेज रूप कुण्डलनी द्वारा मूलाधारादिषट् चक्र भेदन करने से युग कल्पादि रूप ,काल की गणना को जीतकर अमर रूप से गाया जाता है और जिस मत्स्येन्द्रनाथ में आनन्द सागर आदि नाथ महेश्वर ही ज्ञान रूप से प्रकट हुए (अर्थात् आदिनाथ जी के शिष्य होने से उनका समस्त ज्ञान भण्डार उनमें आगया उस स्थूल सूक्ष्म गुण रहित श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी को वार २ प्रणाम करता हूँ। अजपा नाम की गायत्री योगियों को मोक्ष प्रदान करने वाली है, इसके संकल्पमात्र से ही सब पापों से

मुक्त होजाता है। इसके समान विद्या इसके समान जप और इस के सदृश ज्ञान न हुआ है न होगा। इसके समान सुखदायक इसके समान तप और इसके समान जानने योग्य वस्तु न हुई न होगी। इसी कारण काल के भय से ब्रह्मा और सब योगी तथा मुनि लोग प्राणायाम के अभ्यास में संलग्न रहते हैं इसलिये प्राणायाम करे, जिस में सब संकल्पों को नष्ट करके सब काम क्रोध लोभ मोहादि द्वन्द्वों की पहुंच से बाहर होकर अपने आत्मा को परमात्मा में लीन कर देता है वह समाधि कही जाती है। समाधि से युक्त योगी शास्त्रों से नहीं जाना जाता कोई प्राणी उसका भेद नहीं जान सकता और किसी प्रकार के मन्त्र तन्त्रों का उसके ऊपर कोई असर नहीं होता। हेतुओं और दृष्टान्तों से रहित, मन और बुद्धि की पहुंच से परे वह अनन्त ज्ञानरूप जो आनन्द है उस तत्त्व को तत्त्व ऐसा ही जानते हैं, जिस प्रकार घी में डाला हुआ घी और दूध में डाला हुआ दूध पहले घी और दूध में मिल जाता है और कुछ भी भेद मालूम नहीं होता, इसी प्रकार योगी भी ब्रह्मरूप ही होजाता है। जब बिन्दु देह में स्थित है तब मृत्यु का भय हो ही नहीं सकता, और जब तक खेचरी मुद्रा बांध रक्खी है, तब तक बिन्दु नहीं जासकता। बिन्दु शिव है और रज शक्ति है, बिन्दु

चन्द्रमा है और रज सूर्य दोनों के संगम से ही परम पद प्राप्त होता है। जो पृथिवी हड़ताल और सुवर्ण के समान पीली अधिष्ठातृ देवता ब्रह्मा के सहित चतुष्कोणाकार और मध्य में (लं) बीज से युक्त है इस पृथ्वी तत्त्व का हृदय में ध्यान कर के उक्त भूमंडल में चित्त सहित प्राण को लीन करके पांच घडी तक स्तम्भ करने की धारणा करे इस धारणा के अभ्यास से पृथिवी तत्त्व अपने वश में हो जाता है। अर्धचन्द्राकार कुन्द पुष्प के समान श्वेत वर्ण अमृत रूप मध्य में 'वं' बीज से युक्त अधिष्ठातृदेवता विष्णु सहित जल तत्त्व का विशुद्ध चक्र में ध्यान करे और उक्त जल तत्त्व में लयलीन हो तथा प्राण को लीन करके पांच घडी तक धारणा करे यह जल स्तम्भन करने वाली धारणा है इसके सर्वदा अभ्यास करने से महाभयंकर काल कूट विष का भी शरीर पर असर नहीं होता वह भी शरीर में ही भस्म होजाता है। इन्द्रगोप कीट के समान लालवर्ण त्रिकोणाकार मूंगे के समान रमणीय मध्य में 'रं' बीज से शोभित अधिष्ठातृ देवता रुद्र सहित अग्नि तत्त्व की तालु में भावना करे उक्त अग्नि तत्त्व में स्वयं और चित्त सहित प्राण को लीन करे और पांच घड़ीतक तन्मय हो,यह वैश्वानरी धारणा है इसके सेवन करने से योगी अग्नि को जीत लेता है अग्नि उसका दाह नहीं कर सकती। गोलाकार कज्जल के ढेर के

समान अतिनील वर्ण मध्य में 'यं' बीज युक्त अधिष्ठातृ देवता ईश्वर सहित वायु तत्व का भ्रू मध्य में ध्यान करे उसी वायु तत्व में स्वयं लीन होकर प्राण सहित चित्त को लीन करे और पांच घड़ी पर्यन्त स्थिर रहे यह वायु तत्व की धारणा है इस धारणा के नित्य अभ्यास करने से योगी आकाश में उड़ने लगता है। गोलाकार निर्मल जल के समान वर्णवाले मध्य में हं बीज और अधिष्ठातृ देवता शिव सहित आकाश तत्व का ब्रह्म रन्ध्र में ध्यान करे फिर स्वयं उनमें लीन हो और चित्त सहित प्राणको उसमें लीन करे यह नभो धारणा मोक्ष द्वार के खोलने में समर्थ है नित्य इसका अभ्यास करने से मोक्ष का द्वार खुल जाता है। वह हजारों तीर्थों में स्नान कर चुका ब्राह्मणों को दान दे चुका हजारों यज्ञ भी उसने कर लिये, समस्त देवताओं का पूज लिया, और पितरों को तृप्त कर चुका तथा स्वर्ग में भेज दिया जिसका मन क्षणभर भी ब्रह्म विचार में स्थिर होगया है।

मू० राजगुह्ये श्रीकृष्ण कृत गोरक्ष नाथ स्तोत्रम्—

गकारोगुणसंयुक्तो रकारोरूपलक्षणः।
क्षकारेणाक्षयंब्रह्म श्री गोरक्षनमोस्तुते॥
नाकारोऽनादिरूपःथकारस्थाप्यतेसदा,

भुवनत्रयमेवैकश्श्रीगोरक्षनमोस्तुते ॥
ब्रह्मणांचपरंब्रह्म रुद्रादीनांशिरोमणे ! ।
त्रैलोक्यंनिर्मितंयेन श्रीगोरक्षनमोस्तुते ॥
सर्वगुणोगुणाभावो निर्गुणश्चगुणाश्रितः ।
साकारोवानिराकारः श्रीगोरक्षनमोस्तुते ॥
संपूजयन्तिदेवास्तं मर्त्यलोकेचमानवाः ।
पातालेनागलोकाश्च श्रीगोरक्षनमोस्तुते ॥
एकाकीवर्ततेनित्यं भवपाशविवर्जितः ।
परंब्रह्माऽक्षयंज्योतिः श्रीगोरक्षनमोस्तुते ॥
नमन्तिब्रह्माविष्णुश्च सुरानृमुनयस्तथा ।
ज्ञानसाराऽखिलाः सिद्धाः श्रीगोरक्षनमोस्तुते ॥
श्रीगोरक्षस्येदंस्तोत्रं स्वयंकृष्णेननिर्मितम् ।
भक्तिंभावविनिर्मुक्तो दासोऽहमितिभावयेत् ॥
आकाशंमन्दिरंयस्य नानारत्नोपशोभितम् ।
हस्तमध्येस्थितंशम्भोरभयंवरदायकम् ॥
श्रीनाथंतुमहात्मानं नजानातिस्वयंहरिः ।
किंचित्किंचित्विजानाति महादेवोनमस्कृतम् ॥

श्रीनाथश्चाऽस्त्ययंदेवो देवानामप्यगोचरः ।
तत्पादौचिन्तयेद्योगी अद्वयोयोगनिश्चलः ॥

कल्पद्रुमतन्त्रेश्रीगोरक्षसहस्रनामस्तोत्रे—

शुद्धस्फटिकसंकाशं जटाजूटंत्रिलोचनम् ।
निरंजनंनिराकारं निर्विकल्पंनिरामयम् ॥
त्रिमूर्तिंचत्रिलोकीशं विधिविष्णुमहेश्वरम् ।
विश्वरूपंमदाकारं गोरक्षनाथदैवतम् ॥

इत्यादि तथाच—

विद्यापतिर्मन्त्रनाथो ध्याननाथोनिरंजनः
नित्यनाथोभूतपतिर्नित्यानन्दोमहीपतिः ॥
सर्वाराध्यः पूर्णनाथो यतिनाथो यतिप्रियः ।
सृष्टिनाथः स्थितिनाथो हारनाथोमहागुरुः ॥
रमणोराममद्रश्च रामनाथोजनार्दनः ।
घटस्थापनकार्याणि मुक्तिकार्यविशेषतः ॥
विनागोरक्षमंत्रेण नकर्त्तव्यंकदाचन ।
आगमोक्तानिकर्माणि वैदिकानिनथैवच ॥

विनागोरक्षमंत्रेण नासिद्ध्यन्तिसाधयेत्तथा ।

श्रीकृष्णकृत श्रीगोरक्षनाथस्तोत्र—

भा० टी०—गकार गुण संयुक्त है रकार रूप का चिह्न है और क्षकार से अक्षय ब्रह्म लक्षित होता है ऐसे श्रीगोरक्षनाथ जी मैं आप को नमस्कार करता हूं । आप ब्रह्माओं के ब्रह्मा और रुद्रों के शिरोमणि हो, त्रैलोक्य की रचना करने वाले हे गोरक्ष नाथ ? मैं आपको प्रणाम करता हूं ।

आप सर्वगुण युक्त और गुणातीत हैं और निर्गुण होते हुए भी गुणों में स्थित हैं आप साकार और निराकार हैं मैं आपको नमस्कार करता हूँ । स्वर्ग में देव मर्त्यलोक में मनुष्य और पाताल में नाग आपकी पूजा करते हैं ऐसे सर्वपूज्य आपको प्रणाम करता हूं । आप संसार बन्धन से रहित होकर एकाकी वर्तमान हैं और अक्षय ज्योति रूप परब्रह्म हैं हे श्रीगोरक्ष नाथ ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूं । यह गोरक्षनाथजी का स्तोत्र श्रीकृष्ण ने बनाया है भक्ति भाव से युक्त होकर मैं गोरक्षनाथजी का दास हूं ऐसी भावना करे। जिसका मन्दिर नाना रत्नों से शोभायमान आकाश महादेव के हाथ में स्थित है । ब्रह्मा विष्णु आदि देवता मुनि मनुष्य और महा सिद्ध ज्ञानी आपको नमस्कार करते हैं ऐसे मैं आपको नमस्कार करता हूं । महात्मा श्रीनाथ को स्वयं विष्णु भी नहीं जान सकते उस सर्व नमस्कृत

नाथ को महादेव कुछ २ जानते हैं। श्रीनाथदेवों से भी अप्राप्य हैं और अक्षय देव हैं अक्षय योगी सदा योग में निश्चल होकर उसके चरणों का ध्यान करे।

कल्पद्रुम में श्री गोरक्ष सहस्त्र नाम स्तोत्र है। शुद्ध स्फटिक के समान शुभ्र जटाजूट धारी त्रिलोचन निरंजन निराकार निर्विकल्प निरामय त्रिमूर्ति त्रिलोकेश ब्रह्मा विष्णु महेश्वर रूप विश्वरूप सदाकार, नाथ देवगोरक्ष, विद्यापति मंत्रनाथ ध्यान नाथ निरंजन, नित्यनाथ भूतपति नित्यानन्द मही पति सर्वाराध्य पूर्णनाथ द्युतिनाथ द्युतिप्रिय सृष्टिनाथ, क्षितिनाथ हारनाथ महागुरु रमण रामभद्र रामनाथ जनार्दन, घट स्थापन के कार्य और विशेष रूप से मुक्ति के कार्य गोरक्ष मंत्र के बिना कभी नहीं करने चाहियें, शास्त्रों और वेदों में कहे हुए कोई भी कर्म गोरक्ष मंत्र के बिना सिद्ध नहीं होते इस लिये साधक को उचित है कि उन्हें गोरक्ष मंत्र से ही सिद्ध करे।

मू०—भारसंग्रहेब्रह्माण्डपुराणेललितापुरवर्णनेलालिताखण्डे—

तस्यचोत्तरकोणेतु वायुलोकोमहाद्युतिः।
तत्रवायुशरीराश्च सदानन्दमहोदयाः॥

सिद्धादिव्यर्पयश्चैव पवनाऽभ्यासिनोपरे ।
गोरक्षप्रमुखाश्चान्ये योगिनोयोगतत्पराः ॥

द्वात्रिंशत्तमेऽध्याये—

नाथान्तरामिति प्रोक्तं हस्त विंशतिचोन्नतम् ।
चतुर्नल्वप्रविस्तारं प्राग्वत् सोपान मण्डितम् ॥
तत्र नाथामहादिव्या योगशास्त्र प्रवर्तकाः ।
सर्वेषां मंत्रगुरवः सर्वविद्या महार्णवाः ॥
चत्वारो युगनाथास्तु लोकानामभिगुप्तये ।
सृष्टाः कामेशदेवेन तेषांनामानि मच्छृणु ॥
मित्रीशोड्डीश षष्ठीश चर्याख्याःकुम्भसंभव ? ।
तैः सृष्टा बहवोलोका रक्षार्थं पादुकात्मकाः ॥
दिव्यौघा गुरवः प्रोक्ता स्तेषां नामानि मच्छृणु ।
मित्राद्यामानवौघाश्च सिद्धौघास्सुरतापसाः ॥
प्रायः सालोक्यसारुप्य सायुज्यादिकसिद्धयः ।
महान्तोगुरवस्तांस्तु सेवेतचतुरोगुरून् ॥

स्कन्दपुराणे काशीखण्डे—

मम भक्तिप्रकुर्वाणा येविश्वेशंद्विपन्तिवै ।
विद्धिपोममतेज्ञेयाः पिशाचपदगामिनः ॥
अध्यासतेऽन्धतामिस्रं मृतास्तेऽन्यत्रसन्ततम् ।
शिवनिन्दापरायेच येचपाशुपतनिन्दकाः ॥
विद्धिपोममतेज्ञेयाः पतन्तिनरकेऽशुचौ ।
अष्टाविंशतिकोटीषु नरकेषु क्रमेणहि ॥
कल्पेकल्पे वसेयुस्ते येविश्वेश्वरनिन्दकाः ।
विश्वेशाऽनुग्रहं प्राप्य मुनेऽहमपिमुक्तिदः ॥
मद्भक्तैस्ताद्विशेषेण सेव्यो विश्वेश्वरोऽनिशम् ।
इयंवाराणसीप्रिया पाशुपतरथस्थली ॥

भा०—सारसंग्रह महागरुडपुराण के ललितापुर वर्णन ललिताखण्ड में लिखा है—उसके उत्तरकोण में प्रकाशमान वायुलोक है वहाँ सदा महानन्दशील महोदय लोग वायु शरीरधारी सिद्ध और दिव्य ऋषि रहते हैं बहुत से प्राणायामी हैं और बहुत से योग में तत्पर श्रीगोरक्षनाथादि योगी हैं। बारहवें अध्याय में लिखा है कि यहां बीस हाथ ऊंचा चारसौ हाथ विस्तार वाला और सीढ़ियों से युक्त लोक है यहां महादिव्य योग शास्त्र

के प्रवर्तक सबके मंत्र गुरु सब विद्याओं और तपस्याओं से युक्तमहासिद्धनाथ रहते हैं।

यहां चार युगनाथ हैं जिनकी स्थिति संसार रक्षा के लिये कामविजेता देवाधिदेव स्वयं महादेव करते हैं। उनके नाम सुनो, मित्रीश, उड्डीश, षष्ठीशचर्या और हे कुम्भ सम्भव। उन्होंने बहुत से लोकों की रचना की है, वे उनकी रक्षा के वास्ते पादुका रूप में रहते हैं। उनमें जो देव लोक में मंत्र आदि के प्रचारक हैं उनके नाम मित्र आदि अन्यत्र कहे गये हैं वे दिव्यौघ कहलाते हैं जो सिद्धों में प्रचार करते हैं वे सिद्धौघ और मनुष्यों में प्रचार करने वाले मनुष्यौघ कहे जाते हैं ये सब तपोनिष्ठ देव हैं। ये सब सालोक्य, सारूप्य और सायुज्य आदि सिद्धियों के दाता और महागुरु हैं इन तीनों और अपने मंत्रदाता गुरु की सेवा सबको करनी चाहिये। स्कन्दपुराण काशीखण्ड में लिखा है कि मेरी भक्ति करते हुए जो विश्वेश महेश्वर शिव जी से द्वेष करते हैं वे द्वेषी समझने चाहियें। वे मरकर पिशाच बनते हैं, वे अगले जन्म में सदा के लिये घोर अन्धकार वाले नरक में रहते हैं। जो शिव की और पाशु पत मत की निन्दा करते हैं वे भी मेरे द्वेषी हैं, वे अपवित्र नरक में पड़ते हैं, वे २८ करोड़ वर्ष तक अपवित्र नरक में ही पड़े रहेंगे। विश्वेश्वर के निन्दक हरएक कल्प

में नरक में ही वास करेंगे क्योंकि हे मुने ! मैं विष्णु स्वयं विश्वेश्वर के अनुग्रह से ही मुक्ति का दाता हूं। मेरे भक्तों को सदा विश्वेश्वर की सेवा करनी चाहिये। यह वाराणसी नगरी पशुपति के रथ की लली है अर्थात् पशुपति यहां सर्वदा विहार करते हैं।

मू० तन्त्रमहार्णवे—

रक्तं नेत्रं हीनच्छाया रक्तंगात्रं तपस्विनः।
मूर्तिः प्रसन्नवदना स्वल्पवाणी च कथ्यते ॥
चतुरशीतिसिद्धानां पूर्वादीनांदिशांन्यसेत्।
एक विंशति संख्याकं स्थानंनाम्ना च कथ्यते ॥
नवनाथादिशाघष्टावेकोमध्ये व्यवस्थितः।
नवनाथस्थितिञ्चैव सिद्धयागमेनकारयेत् ॥
गोरक्षनाथोवसेत् पूर्वे जगन्नाथवनेस्थितः।
क्रोशत्रये वसेन्नित्यमेकनाथः सउच्यते ॥
जलन्धरोवसेन्नित्य मुत्तरापथमाश्रितः ॥
ज्वालामुखीपंचक्रोशं वनमुत्तरमाश्रितः।
नागार्जुनोमहानाथो ज्वालयेशानसंश्रितः।

नित्य रहे वह एक नाथ कहाता है। जालन्धरनाथ सदा उत्तर पथ में बसता है ज्वालामुखी उत्तर की तरफ पंचकोशी वन में रहता है, महा तपस्वी महानाथ नागार्जुन ज्वालामुखी से ईशानदिशा में सात कोश के वन में तपता है, सहस्त्रार्जुन गोदावरी के दक्षिण दशकोश विस्तृत वन में तप करता है। महानाथ दत्तात्रेय पश्चिम दिशा में सरस्वती के पश्चिम तीर पर नौकोश के वन में तपस्या करता है, देवदत्त अग्निकोण में पांच कोश के वन में रहता है। जड़ भरत वायव्यकोण में सात कोश के वन में रहता है। पृथिवी के मध्य देश कुरुक्षेत्र में तीन तीन कोश के वन में श्री आदिनाथ जी निवास करते हैं और समुद्र से नैऋ्तकोण में मत्स्येन्द्रनाथ रहते हैं ये महासिद्ध उपास्य नाथों के स्थान हैं यह गुप्त बात किसी को बतानी नहीं चाहिये।

मू०—षोडशनित्यातन्त्रे—

कादिसंज्ञाभवेद्रूपा सा शक्तिः सर्वसिद्धये।
तयातैर्भुवनेतन्त्रं कल्पेकल्पेविजृम्भते॥
अवसानेतु कल्पानां सार्धैः साधंव्रजेचमाम्।
नामपर्य्यायितोऽवाप्तं बालाबालामितिद्वयम्॥
प्रसिद्धंवाद्यतोयच त्रीणिनामानिसाधके।
नमस्तेनाथभगवन् शिवायगुरु रूपिणे॥

मू०—रुद्रयामले रससाधन प्रकरणे—

शिवरात्रिदिने प्राप्ते आरम्यं कार्यसाधकैः ।
चतुः षष्ठीप्रमाणेनकोष्ठं कृत्वातुभैरवम् ॥
पार्श्वयोर्मूर्तिमालां च मध्येमूर्तिंचाविन्यसेत् ।
तस्याग्रेजुहुयात्सर्वेर्हेमसिद्धिप्रजायते ॥
रक्तोपवीत वामस्तुदद्याद्द्विजपुंगवम् ।
कोष्ठसंख्यातदर्धार्धयोगिनींतत्रपूजयेत् ॥
श्रृंगीनादेन ते सर्वे मनसाऽऽह्लाद कारिणा ।
रक्तोर्णवहकरश्रेष्ठः स्कंधाग्रश्रृङ्गमाश्रितः ॥
मुखंकमलयायुक्तं नेत्रेकमल भूषणम् ।
पृष्ठे च कमलाकारं हंसगत्या विराजितम् ॥
रक्तवासोत्तरीयेन वरमंत्रंपुरोन्यसेत् ।
रक्तचन्दनसंघृष्टमपूपस्योपरिन्यसेत् ॥
स्वादयेत् सप्तदिवसं पश्चात्पुण्येसमर्पयेत् ।
रसायिनी महाविद्यासिद्धिर्भवतिनिश्चितम् ॥

तारासूक्तौ—

प्रणवो निर्गुणः प्रोक्तः सर्वार्थोवेदगोचरः ।

मूर्ति के कंधे पर लाल ऊन का वस्त्र रक्खे। कमल नेत्र प्रसन्न मुख पीठ में कमल के चिन्ह से युक्त और हंस गति से सुशोभित तथा लाल वस्त्रधारी भैरव की मूर्ति का ध्यान करे। और उसका बीज मन्त्र जपे। फिर रोट के ऊपर लाल चन्दन सहित फूल रख कर भोग लगावे सात दिन के बाद विसर्जन करके मूर्ति को पवित्र स्थान में स्थापित करे तब अवश्य रसायनी महाविद्या की सिद्धि हो जाती है। तारा सूक्ति में प्रणव का सब का आदि कहा है और वेदों से जाना जाता है गायत्री वेदों की माता है वेदों में प्रणव ही मुख्य कहा गया है। कुलार्णव तन्त्र के बारहवें उल्लास में कहा है कि हे प्रिय जिस दिशा में श्री नाथ जी के चरण विराजमान हैं उस दिशा को प्रति दिन भक्ति पूर्वक प्रणाम करे। गुरुपादुकाओं से बढ़ कर कोई मन्त्र नहीं है। गुरु से बढ़ कर कोई देव नहीं है शाक्त मार्ग से उत्तम कोई मार्ग नहीं है और कुल पूजन से बढ़ कर कोई पुण्य नहीं है।

मू०—वायु पुराणे शिवस्तोत्रे—

अप्रमेयायगोप्त्रेच निर्गुणाय गुणाय च।
वादप्रियाय सभ्याय मुद्रामणिधरायच॥
देशेकाल उपायेन द्रव्यंश्रद्धासमन्वितम्।

अस्मिन्नर्थेश्रुतिः साध्वी समाप्तावेदवित्तमाः ॥
अपक्वचित्तैर्मोक्षार्थं देवाविष्णवादयोपिच ।
ध्येयाः पक्वैः शिवोध्येयः साक्षात्संसारमोचकः ॥
रुद्राद्विश्वाधिकांविष्णुं ब्रह्माणंचान्यमेव च ।
समंचिन्तयतःसाक्षात्संसारः परिवर्तते ॥
महापापवतांपुंसां पूर्वजन्मसुसुव्रत ? ।
विष्णुः सर्वाधिकोभाति नसाक्षात्परमेश्वरः ॥
विष्णु मर्वाधिकोभाति नारकीमनसंशयः ।
विष्णुः सर्वाधिकोनान्य इतिचिन्तयतांनृणाम् ॥
नास्तिसंसार विच्छित्ति कल्पकोटिशतैरपि ।
तेषांनैवचमोक्षाशाकल्पकोटि शतैरपि ॥
ब्रह्मादिदेवतानांच विश्वाधिकयंवदन्तिये ।
अधोमुखोर्ध्वपादास्ते यास्यन्तिनरकार्णवम् ॥

भा० टी०—वायु पुराणस्थ शिव स्तोत्र में वर्णन है कि—अप्रमेय अर्थात् पक्षपात रहित परोपकारी सांसारिक आसक्ति रहित-औदार्य गुण युक्त सत्य सनातन सिद्धान्तोपलब्धी सभ्य और धार्मिक वेषधारी सत्पात्र को देश काल उपाय के अनुकूल जो धन श्रद्धा के साथ दिया जाय वह धर्म का लक्षण है।

ही ध्यान करना चाहिये जो सब से अधिक शिवको प्रथ्वी विष्णु आदि अन्य देवताओं के समान मानता है वह संसार सागर से पार नहीं होता। जिसने पूर्व जन्म में पाप किया उस पुरुष को विष्णु ही सब से अधिक प्रतीत होता है न कि साक्षात् परमेश्वर शिवजी। जिस को विष्णु सर्वाधिक प्रतीत होता है वह शिव का अनादर करता है इस लिये वह नरक में पड़ता है। सब से बड़ा विष्णु है शिव नहीं ऐसा समझने वाले पुरुषों का करोड़ों कल्पों तक भी संसार से छुटकारा नहीं होता।

उनको कदापि मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। शिवजी से ब्रह्मादि देवों को बड़े कहने वाले पुरुष नीचे मुख और ऊपर पैर किए हुए नरक में पड़ते हैं।

मू०—आदिनाथ संहितायाम्—

कौलिकान् कुलमार्गं च कुलद्रव्यं कुलाङ्गनाः।
ये द्विषन्ति जुगुप्सन्ते ये निन्दन्ति हसन्ति ये
येऽसूयन्ते च शंकन्ते मिथ्येतिप्रवदन्तिये ॥
ते शाकिनीमुखेयान्ति सदारसुतबांधवाः।
पिबन्ति शोणितं तेषां चामुंडामांसभुक्त्वचः।

अर्थानि चर्वयन्त्यस्य योगिन्योभैरवीगणाः ॥

पद्मपुराणेसृष्टिखंडे—

धारयित्वातु रुद्राक्षं म्रियतेयः चितौनरः ।
स यातियत्परंरम्यं सर्वदेवैः प्रपूजितः ॥
शैवोवा वैष्णवश्चान्यो गाणपत्योऽथसौरकः ।

पातालखंडे—

अहंच ललिता देवी राधिकायाच गीयते ।
अहंचवासुदेवाख्यो नित्यकामकलात्मकः ॥
सत्य योपित्स्वरूपोहं योपिच्चाहं सनातनी ।
अहंच ललितादेवी पुंरूपाकृष्णविग्रहा ॥

ब्रह्मवैवर्ते—

महाविष्णो रहंकारो बभूवसहसेति च ।
सर्वं ब्रह्मोमकूपेषु विद्यते चाहमीश्वरः ॥
संहार भैरवोभूत्वा तं जग्राहसलीलया ।
स्थितेमूर्ध्नाविशेषेण प्रसादंचचकार सः ॥
सर्वात्मानंध्यायमानं स्तुतं भीतंकृपानिधिम् ।
तच्छरीरं सुसम्पन्न पुनरेवचकारसः

शिवपुराणे—

क्वच भेरीकलापश्च क्वचश्रृङ्गरवः शुभः ।

क्वाऽऽनकमयः शब्दो गल्लनादः क्वचापिहि ॥

शक्तिसंगमतंत्रे अष्टमपटले—

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपाकृष्णविग्रहा ॥

लोक संमोहनार्थाय स्वरूपं विभ्रतीपरा ।

कदाचिदाद्या श्रीकाली सैवतारास्ति पार्वती ।

कदाचिदाद्याश्रीतारा पुंरूपारामविग्रहा ॥

राशक्तिरिति विख्याता म शिवः परिकीर्तितः ।

शिव शक्त्यात्मकं ब्रह्म रामरामेति गीयते ॥

योगासन समारूढं जटामंडल मंडितम् ।

विभूति भूषितं देवं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥

तेजः पुंजनिभां देवि ! सीतांतेजः स्वरूपिणीम् ।

गौरीरूपां परां सीतां महासाम्राज्यनायिकाम् ॥

भा०—आदिनाथ संहिता में कहा है—कौलिक अर्थात् शाक्त कुलमार्ग कुल द्रव्य और कुलाङ्गना अर्थात् कुलीन स्त्री, इन शक्ति सम्बन्धी समस्त वस्तुओं को जो निन्दा करते हैं हंसते

हैं द्वेष घृणा असूया और शंका करते हैं तथा यह मिथ्या है ऐसा जो कहते हैं वे स्त्री पुत्र और बन्धुओं सहित शाकिनी के मुख में पड़ते हैं। चामुण्डा देवी योगिनी और भैरव के गण उनके रूधिर को पीते हैं मांस को खाते हैं और हड्डियों को चबा जाते हैं। पद्म पुराण के सृष्टि खण्ड में कहा है जो रुद्राक्ष धारण करके पृथिवी पर प्राणत्यागता है वह सर्वोत्तम रूप को प्राप्त होता है और सब देवों का पूज्य हो जाता है वह शैव वैष्णव गाणपत्य वा सौर कोई भी क्यों न हो। पातालखण्ड में कहा है मैं ललिता देवी हूँ मैं ही राधा कहलाती हूँ और मैं ही कामकला रूप होकर वासुदेव कहलाती हूँ। समस्त स्त्रियों में पतिव्रता और सदा रहने वाली मैं ही हूँ। पुरुष रूप धारण करने वाली कृष्ण स्वरूप भी मैं ही हूँ। ब्रह्मवैवर्त में कहा है—

महा विष्णु से सहसा अहंकार (अर्थात् विराट्) उत्पन्न हुआ उस विराट् रूप मेरे रोम कूपों में समस्त प्राणी विद्यमान हैं, मैं ईश्वर हूँ, फिर संहार भैरव रूप होकर क्रीडा मैं सबका संहार कर लेता हूँ। समस्त प्राणियों को मुंड रूप होकर मुझ में विद्यमान हो जाने पर मैं प्रसन्न हो जाता हूँ, उस मैंने सर्व स्वरूप, देवों से स्तूयमान, प्रशंसित दयासागर प्रसन्न रूप यह शरीर बनाया।

शिवपुराण में वर्णित है—वह मेरा मेरी इत्यादि वाद्यमान समुदाय और शृंगी का शब्द कहां है तथा दुन्दुभि का शब्द औ गल्लनाद कहां है। शक्तिसंगमतंत्र के आठवें पटल में कहा है—

किसी समय मायासुन्दरी ललिता देवी ने लोगों के मोह के लिये अत्यन्त सुन्दर पुरुष रूप कृष्ण शरीर धारण किया। कभी आद्या श्री कालीरूप पार्वती कभी रामावतार और तारारू धारण करती हैं। 'रा' का अर्थ शक्ति और 'म' का अर्थ शि कहा जाता है अतः शक्ति सहित शिव रूप ब्रह्म ही राम कहलाता है, योगासन में आरूढ़ जटाजूट भस्म विभूषित त्रिनेत्र चंद्रशेखर अर्थात् शिव और तेजः पुञ्ज के समान तेज रूपिणी गौरी रूप साम्राज्य देने वाली सीता का ध्यान करना चाहिये।

मू० बृहदारण्ये— द्वेवाव ब्रह्मणो रूपेमूर्त्तं चैवामूर्त्तं च मर्त्यंचामृतंच स्थितं च यच्चसच्चत्यच्च ॥ तदेतन्मूर्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्च तन्मर्त्यमेतत् स्थितमेतत् सत्तस्यैतस्यमूर्तस्यैतस्यमर्त्यस्यैतस्य स्थितस्यैतस्य सत एषरसोयएषतपति सतोह्येषरसः ॥ अथामूर्तंवायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतमेतद् यदेतत्त्य त्तस्यैतस्यामूर्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैषरसो य एषएतस्मिन् मण्डलेपुरुषस्त्यस्यह्येषरस इत्यधिदैवतम् ॥ अथाध्यात्ममिदमेवमूर्तंयदन्यन् प्राणाच्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतन्मर्त्यमेतत् स्थितमेतत्

मवस्यैतस्य मूर्यस्यैतस्य मर्त्यस्यैतस्यस्थितस्यैतस्य सवएषरसो यत्. सतोह्येपरसः ॥ अथामूर्त्तप्राणश्च यश्चायमन्तरा-काश एतदमृतमेतद् यदेतत्त्यं तस्यैतस्यामूर्तस्यैतस्या-मृतस्यैतस्य यतएतस्य त्यस्यैषरसोयोऽयं दक्षिणेचन् पुरुष-स्यह्येषरसः ॥ तस्यहैतस्य पुरुषस्यरूपं यथामहारजनं वासो यथापाण्ड्वाविकं यथेन्द्रगोपो यथाग्न्यर्चिर्यथापुण्डरीकं यथास-कृद्विद्युत्तंसकृद्विद्युतेवहवा अस्य श्रीर्भवति य एवं वेदाथात आदेशो नेति नेतिनह्येतस्मादितिनेत्यन्यत् परमस्त्यथ नामधेयं सत्यस्य सत्यमिति प्राणावैसत्यं तेषामेषसत्यम् ॥

यः पठित्वापिनज्ञातं ब्रह्मतेनाविका इव ।
नयन्तिपारं येत्वन्यान् स्वयमवीचिसंस्थिताः ॥
यस्त्यात्सृज्यतेविश्वं शिवेनपरिपाल्यते ।
कालेनचसंह्रियते मुक्तिर्नाथेनदीयते ॥

भा०—ब्रह्म के दो रूप हैं एक मूर्त जिसका अवयव घनीभूत दूसरा अमूर्त जिसका कोई अवयव नहीं है। मर्त्य मरनेवाला और अमर्त्य न मरने वाला, स्थित अर्थात् परिमाण वाला दो रूप यत् (व्यापक अपरिछिन्न) सत् (जिसका असा-धारणधर्म गोरक्षमनुष्यत्व घटत्वादि प्रत्यक्ष से निर्णय किया

जा सके) त्यत् (जो प्रत्यक्ष करने योग्य न हो) इन में मूर्त, मर्त्य, स्थित, सत्, ये चार नाम पृथिवी जल तेज इन तीन भूतों के हैं। दूसरी कोटि में अमूर्त, अमृत, यत् और त्यत् ये चार नाम आकाश वायु इन दो भूतों के हैं इस तरह कल्पना से पाँचों भूतों को ब्रह्म का रूप मान कर नेति नेति से इन्हीं का निषेध करके ब्रह्म का निर्णय किया जाता है इसी विधि निषेध को अध्यारोप और अपवाद कहते हैं वेदान्त में कल्पना से पहले रूप मान लिया जाता है पीछे उसका निषेध कर दिया जाता है इसका फल यह है कि पाञ्च भूतों की सत्ता सब जगह से हटा देने पर अद्वितीय ब्रह्मसिद्ध होजाता है। इन तीन स्थूल भूतों का सार यह सूर्य मंडल है, उस में जो सूक्ष्म लिंग शरीर है सो आकाश और वायु इन दो भूतों का सार है यह विचार देवशरीर के सम्बन्ध में है, अब आगे अध्यात्म वर्णन किया किया जाता है—इसी प्रकार शरीर के भीतर प्राण और आकाश इन दोनों को छोड कर, तीन अर्थात् पृथिवी जल और तेज मूर्त, मर्त्य, स्थित, और सत् कहलाते हैं, इनका सार नेत्र है, प्राण और हृदयाकाश ये दो अमूर्तादि कहे जाते हैं, इनका सार नेत्र में अभिमान करने वाला लिंग शरीर है, वासना इसी लिंग शरीर का धर्म है, यद्यपि वे लिंग शरीर अगणित हैं तथापि दृष्टान्त के द्वारा कुछ दिखाया जाता है। उस सूक्ष्म शरीर का

यह रूप वासनामय है उसकी उपमा केसर से रंगे हुए वस्त्र से दी जाती है वह भूमले रंग की ऊन के समान भूमला है, वीर बहूटी (अर्थात् तीजनामकजन्तु के समान लाल सफेद कमल के समान शुभ्र, चमकती हुई बिजली के समान चमकता हुआ, सब जगह बिजली की तरह एक दम उसकी चमक फैल जाती है जो इस रहस्य को जानता है उसको श्री प्राप्त होती है।

आगे यह ब्रह्म का उपदेश है—यह पूर्वोक्त समस्त दृश्यमान स्थूल सूक्ष्म जगत् ब्रह्म नहीं है, 'नेतिनेति, इस निषेध रूप उपदेश से दूसरा ब्रह्म जानने का उपाय नहीं है। अब ब्रह्म का खास नाम बताया जाता है, वह यह है— "सत्यस्य सत्यम्" इसका अर्थ यह है कि प्राण आदि भी महा प्रलय तक विद्यमान रहने से व्यवहार में सत्य कहलाते हैं, किन्तु तीनों कालों में अबाध्य रूप वास्तविक सत्य तो ब्रह्म ही है, अतः परम सत्य इसका खास नाम है।

जिन्होंने शास्त्र पढ़कर भी ब्रह्म को नहीं जाना वेनाविकों की तरह हैं जो दूसरों को पार उतारते हैं और स्वयं तरहों में ही रहते हैं। शक्ति से विश्व की उत्पत्ति होती है शिव उसका पालन करता है, काल उसका संहार करता है, और नाथ मन में मुक्ति देता है।

मू०—ब्रह्मण्यप्राप्तेसति ब्रह्मतन्तुधारणमयुक्तम् ।
केचित्सूत्रधारकाः केवलजात्यभिमानिनः पुरुषाः ॥

अथचकाष्ठदंडधारका आश्रमिणो दण्डिनस्तेषां दंडन करणे उपनिषत्सम्मतिमाह महोपनिषदि—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यंप्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।
सशिखंवपनंकृत्वा बहिः सूत्रंत्यजेद्बुधः ।
यदक्षरंपरंब्रह्म तत्सूत्रमभिधारयेत् ॥
सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रंनामपरंपदम् ।
तत्सूत्रंविदितंयेन सविप्रोवेदपारगः ॥
येनसर्वमिदंप्रोतं सूत्रेमणिगणाइव ।
तत्सूत्रंधारयेद्योगी योगवित्तत्त्वदर्शिवान् ॥
बहि सूत्रंत्यजेद्विद्वान् योगमुत्तममास्थितः ।
ब्रह्मभावमिदंसूत्रं धारयेद्यः सचेतनः ॥
धारणात्तस्यसूत्रस्य नोच्छिष्टोनाऽशुचिर्भवेत् ।
सूत्रमन्तर्गतंयेषां ज्ञानयज्ञोपवीतिनाम् ॥

तेसूत्रविदोलोके तेचयज्ञोपवीतिनः ।
ज्ञानमेवपरंतेषां पवित्रंज्ञानमुत्तमम् ॥
अग्नेरिवशिखानान्या यस्यज्ञानमयीशिखा ।
सशिखीत्युच्यतेविद्वान् नेतरेकेशधारिणः ॥
कर्मण्यधिकृतायेतु वैदिकेब्राह्मणादयः ।
तैः सन्धार्यमिदंसूत्रं क्रियाङ्गंतद्धिवैस्मृतम् ॥
ब्राह्मण्यंसकलंतस्य इतिब्रह्मविदोविदुः ॥
इदंयज्ञोपवीतंतु परमंयत्परायणम् ।
विद्वान् यज्ञोपवीतिस्यात् सयज्ञः सचसर्ववित् ॥

परमहंसोपनिषदि—

परमात्मनोरेकत्वज्ञानेनतयो र्भेदएवएव विभग्नो या सा सन्ध्या सर्वान्सकामान् परित्यज्याद्वैतेपरमस्थितिः ॥

ज्ञानदण्डोधृतोयेन एकदंडीसउच्यते ।
काष्ठदंडोधृतोयेन सर्वाशीज्ञानवर्जितः ॥
सयातिनरकान्घोरान् महारौरवमेवच ।
शास्त्रोक्तविषयाण्याम मजानन्तः केवलं शास्त्र पाठ

मात्रेणैवाभिमानिनस्तान् प्रतिवाक्यमेतत् इत्याह—
द्वादशवर्षो भूत्वाविद्याभ्यासमर्हति ॥

ततश्च यावद्द्वादशवर्षंशब्दबोधार्थं व्याकरणशास्त्रमध्येतव्यं ततश्चयावद्द्वादशवर्षमर्थबोधार्थं न्यायशास्त्रमध्येतव्यं ततश्चयावद्द्वादशवर्षं वेदोऽध्येतव्यस्ततश्च षट्सुवर्षेषु वेदान्ताभ्यासः कर्तव्य एवषट्सुवर्षेषु शास्त्रीयरीतिर्ज्ञातव्या । पुनरभ्यासश्चकर्तव्य एव-मायुषोऽर्धन्तु गतप्रायमेव । ततः पुनरिन्द्रियाणां शैथिल्येऽरिष्टेच-सत्यभ्यासासक्तत्वं भवेत् ततः प्रथमतः साक्षरतामात्रं पाण्डित्य-मापाद्यमनुष्ठेयोंगाभ्यासः कर्तुमुचितइति ।

भा०—ब्रह्मज्ञान के प्राप्त होने पर ब्रह्मतन्तु धारण करना अनावश्यक है, यद्दत ने सूत्र धारण करने वाले केवल जात्य-भिमानी ही होते हैं । और काष्ठ का धारण करने वाले जो आश्रमी दण्डी हैं, उन के खंडन करने में उपनिषद् की सम्मति लिखी जाती है— यज्ञोपवीत परम पवित्र है यह आदि सृष्टि में प्रजापति के साथ उत्पन्न हुआ, यह आयु के बढ़ाने वाला पूज्य पवित्र और शुभ्र है इसको धारण कर यह बल और तेज के देनेवाला है। शिखा सहित हजामत करवा कर बुद्धिमान् जिज्ञासु बाहरी

सूत्र को त्याग दे और जो अक्षर पर ब्रह्म है उस सूत्र को धारण करे। सूचित करने से सूत्र कहाता है सूत्र ही परम पद है। उस सूत्र को जो जानता है वह वेद का पार द्रष्टा ज्ञानी है। जिसमें यह समस्त जगत् धागे में मणियों की तरह पिरोया हुआ है, तत्त्व दर्शी योगी उस सूत्र को धारण करे। विद्वान् योगी योग साधन करता हुआ बाहरी सूत्र को त्यागदे, समस्त जगत् का ब्रह्मरूप समझना यह जो सूत्र है इसे ज्ञान पूर्वक धारण करे, इस सूत्र के धारण करने से कभी झूठा या अपवित्र नहीं होता जो ज्ञान का यज्ञोपवीत धारण करते हैं और जिनके भीतर ही सूत्र है वे ही वास्तव में सूत्र के ज्ञाता हैं, और वे ही यज्ञोपवीती हैं। अग्नि की ज्वालाओं के समान प्रकाशमान ज्ञान मयी शिखा का जो धारण करता है वही विद्वान् वास्तव में शिखाधारी है साधारण केशों को धारण करने वाले शिखाधारी नहीं कहे जा सकते। जो ब्राह्मण आदि वैदिक कर्मों में अधिकृत हैं उन को यह यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये, क्योंकि यह यज्ञोपवीत क्रिया का अङ्ग है। ज्ञानमयी जिस की शिखा और ज्ञानमय ही जिसका यज्ञोपवीत है वह वास्तव में ब्राह्मणत्व का अधिकारी है ऐसा वेदज्ञाता कहते हैं। यह यज्ञोपवीत परमोत्कृष्ट स्थान है,

इस यज्ञोपवीत को जो विद्वान् धारण करता है वही यज्ञ और वही सर्वज्ञ है। परमहंसोपनिषद् में जीवात्मा परमात्मा के एकत्व ज्ञान से जो उन का भेद दूर हो जाता है वही वास्तविक सन्ध्या है, जो इस स्थिति को प्राप्त होगया हो वह सब कामनाओं को त्याग दे। ज्ञान दण्ड को जिसने धारण कर लिया वही एक दण्डी है। जो संयम रहित सर्वभक्षी अज्ञानी काष्ठ दण्ड को धारण करता है, वह घोर महारौरव नरक में गिरता है। जो शास्त्रों में वर्णित तत् तत् विषयों के अभ्यास को न जानते हुए केवल पठन मात्र से ही अभिमान में चूर रहते हैं उनके प्रति यह कथन है—बारह वर्ष का होने पर विद्याभ्यास के योग्य होता है फिर बारह वर्ष तक शब्द बोध के लिये व्याकरण फिर अर्थबोध के लिये न्याय, फिर बारह वर्षतक वेद फिर छः वर्षों में वेदान्त का अभ्यास करना चाहिये, फिर छः वर्षों में शास्त्र की रीति का ज्ञान होता है इस प्रकार आयु का आधा भाग तो चला ही गया, फिर इन्द्रियों की शिथिलता और रोगों के उत्पन्न हो जाने के कारण अभ्यास की शक्ति नहीं रहती इसलिये पहले ही पदपदार्थ का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्यों को योगाभ्यास करना चाहिये।

मू०—येत्वाचार बाहुल्यं दधतोपि वेश्याउपगम्य तत्संगंकुर्व-

वेन्ति, तान् प्रत्यस्माकमिदंकथनम, वाह्यविषयिकामुज्ज्वलतांप्रदर्श्य मानसीमलिनताधार्यते । ततस्त्विदंश्रेयो यद् वेश्या संगोपि न कर्तव्यः, यद्वा वारस्यापि प्रयोजनं नास्ति गौणोऽयमित्याचारं ज्ञात्वाऽस्यत्यागोपी न कार्यः, यथायोग्यत्वेन विवेकपूर्वकं सेवनं चास्य कर्तव्यमिति ।

भवेयं मनुष्यो यदैकस्तु राजा यदाजन्तुरेको भवेयं मृगेन्द्रः।
यदाशास्त्रमेकं तदायोगमेव यदादेव एकस्तदानाथएव ॥

अस्मिन्मार्गेऽद्वैतोपरिवर्तीनाथोदेवता प्राप्योनिराकार ज्योतिर्नाथोध्येयः साकारनाथउपास्योऽथचआदिगुरुः । साधनंयोगः । अत्याश्रमीयोगीगुरुः । मुमुक्षुः साधकः । अवधूतगुरोर्मुख्य चिह्नंनादोमुद्राभस्मशेली ऊर्णायज्ञोपवीतमित्यादि, शक्तिर्जगत्कर्त्री, शिवः पालकः । कालः संहारकः । नाथोमुक्तिदायकः । प्रणवोवेदः । नादः सन्तानम् । नवनाथाः । विन्दुः सन्तानमीश्वरः । मनः शरीरं जीवोऽनुभवः । चत्वारोगुरवः । मत्स्येन्द्रईश्वरश्चतुरंगी गोरक्षइतिस्वरूपाः । अपक्षं वास्तविकपक्षमङ्गीकृत्येतरकल्पित परपक्षपापण्ड खण्डनमित्यादि विषयः ।

भा०—जो बहुत आचार विचार धारण करते हुए वेश्या गमन करते हैं उनको हम यह कहते हैं कि उन्होंने बाहरी उज्ज्वलता दिखाकर मानसिक मलिनता धारण की है, उससे अच्छा यही है कि वेश्या संग भी न करे। बहुत अधिक आचार के बन्धनों में जकड़े रहना भी अनावश्यक है, इसको गौण समझ कर इसका त्याग भी नहीं करना चाहिये। किन्तु विवेक पूर्वक यथा योग्य इसका सेवन अवश्य करना चाहिये। यदि मैं मनुष्य होऊँ तो राजा बनूं यदि पशु योनि में आऊँ तो सिंह बनूं यदि मुझे शास्त्र हो तो योग का हो और यदि देव पूजा करूँ तो केवल एकनाथ की। इस मार्ग में अद्वैत से भी ऊपर वर्तमान नाथ ही देवता है, प्राप्त करने योग्य उसी निराकार ज्योतिस्वरूप नाथ का ध्यान करना चाहिये, और आदिगुरु साकारनाथ की उपासना करनी चाहिये। इस मार्ग में साधन योग है आश्रमों के अभिमान में अतीत योगी गुरु है, मुक्ति का इच्छुक साधक है। अवधूत गुरु का मुख्य चिह्न नाद, मुद्रा, भस्म, शैली, और ऊन का जनेऊ इत्यादि है। शक्ति जगत् की कर्त्री शिवपालक काल संहारक नवनाथ मुक्तिदायक, ओंकारेश्वर, और नाद सन्तान हैं। और ईश्वर बिन्दु सन्तान है। मन शरीर जीव और

अनुभव, ये चार गुरु हैं जिनका स्वरूप मत्स्येन्द्र ईश्वर चतुरङ्गी और गोरक्ष हैं। किसी विशेष पक्षपात को न धारण करके अन्य कल्पित पाषण्डयुक्त पर पक्षों का खण्डन करना यह विषय है।

मू०—परमहंसइति परमहंसंवदन्ति=तत् किम्, उत्कृष्टहंसोऽस्ति यतोनिकृष्टहंसस्तुपरमात्मा । उत्कृष्टहंसत्वन्तुपरमहंसस्य-कुतश्चागतं यदाब्रह्मरूपत्वंप्राप्तः। ब्रह्मरूपत्वंचकुतः प्राप्नोयदिमाया, गुणरचित प्रारब्धकर्माभिमन्यते । एवंचायं तु निकृष्ट हंस-परजीवोऽस्ति, ततश्चतस्य हंसत्वमरालत्वं कुतः। किन्तुकाकत्वमेव परिनाकत्वं सर्वेकाक्षोजातः।

एकाक्षःकोऽयमेकेनैवचक्षुपापश्यतियनयं यथोक्तमायामेव-मायादृशा पश्येत्। यथाचाश्रमीजातस्तत्र सद्विनश्वरपश्यन् वर्तते। इयमप्येकैवदृष्टिस्तयापश्यति। यतोमहासिद्धैर्निश्चयः कृतोऽयंपाकतु-ल्योऽयंदेवएकाक्षकर्तव्यः।

मत्यंप्रपंचंकुर्वन्तो ब्रह्मणश्चादनंतथा।
केचिद्दूरजाटेरा प्राप्ताविपयामक्तमानसा ॥
मिथ्यामिथ्येतिकुर्वन्तः केचनमायाविमोहिताः,
स्वयं सर्वसकुर्वन्त आगताविघ्ननाशकाः ॥

देदीप्यमानस्तत्रस्य कर्तासाक्षात्स्वयंशिवः ।
संरक्षन्तोविश्वमेव धीरा सिद्धमताश्रयाः ॥
तत्त्वंरक्षन्तिचाद्वैते द्वैतरक्षान्तिसंसृतिम् ।
एकीभावेततोभिन्नं द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥
मिथ्यावदन्तियतय सत्यंचापिविरागिणः ।
सिद्धानामेपासिद्धान्तः सत्यमिथ्याविवर्जितः ॥
म्रियतेचेत्कथं सत्यं वर्ततेचेत्कथं वृथा ।
मृतिजीवनहानियत् कथंसत्यंकथं वृथा ॥
एककाले भवेत् सत्य मेककालेतथावृथा ।
कालभेदाद्वृथा सत्यं न सत्यं न वृथा पृथक् ॥

भा०—परमहंस को परमहंस इस प्रकार जो कहा जाता है तो क्या यह उत्कृष्ट हंस है परमात्मा निकृष्ट हंस है, परम हंस का श्रेष्ठ हंसपना तो तभी होसकता है जब कि यह ब्रह्म रूप को प्राप्त होजाय, जब तक उसे माया गुणरचित प्रारब्ध कर्म का अभिमान है तब तक यह परब्रह्म होही कैसे सकता है, अतः यह जीवरूप निकृष्ट हंस ही रहा, इसको हंसपना और मरालपना कैसे प्राप्त हो सकता है, इसे तो कौवापन प्राप्त है, काकपक्षाती होता ही है जो एक ही आंख से देखे यह

देखती है जब वह वर्णों में रहता है तब तो माया को ही माया की दृष्टि से देखता है। जब आश्रमी हुआ तो अद्वैत दृष्टि से ही देखता है यही एक दृष्टि है जिस से वह सब को अद्वैत भाव से देखता है, इस लिये सिद्धों ने निश्चय किया है कि इस शाह की तरह एक आंख से देखने वाले को परमात्मा के दर्शन में एकाक्ष समझना चाहिये। कुछ लोग ऐसे हैं जो माया को प्रपञ्च और ब्रह्म को अंजन बताते हुए रजोगुणी विषयों में ही मन को लगाते रहते हैं। कुछ लोग माया से मोहित होकर समस्त जगत् को मिथ्या मिथ्या कहते हुये अपने को संसार का नेता समझते चले आरहे हैं।

देदीप्यमानशिव ही तत्त्व का कर्ता है सिद्ध मत के अनुयायी योगी लोग संसार की रक्षा करते हैं अद्वैत ॥ तत्त्व को औरङ्गेस में संसार की तथा सभी भाव में द्वैताद्वैत से रहित तत्त्व की रक्षा करते हैं। यति लोग मिथ्या कहते हैं विषयी लोग सत्य कहते हैं परन्तु सिद्धों का सिद्धान्त यह है कि यह सत्य और असत्य से विवर्जित है। यदि मनुष्य मरता है तो वह सत्य कैसे कहा जा सकता है, अगर वह वर्तमान है तो मृषा कैसे हो सकता है जो जीवन मरण से रहित है वह कैसे सत्य और कैसे मृषा होसकता है। एक ही वस्तु एक समय में सत्य और एक समय में मृषा हो सकती है काल भेद से एक ही वस्तु सत्य और असत्य है सत्य और असत्य क्रमश २ नहीं हैं।

मू०—मनोवागनीतोमनोवाङ्मयश्चनाथः ओम् १ नाथः २ शक्तिः ३ कर्ता ४ अकर्ता ५ एतत्पंचकमिति । क्रमेणैतत्पंचकं स्तौति—

अवाच्यमुच्येतकथं पदंतदचिन्त्यमप्यस्ति कथंविचिन्तयेत् ।
अतोयदस्त्येवतदस्ति तस्मैनमोस्तुकस्मैचतनाथतेजसे ॥
अकर्तृतत्कर्तृचतत्परंपदं प्रयान्ति योगामृततृप्तचेतसः
अकर्तृताकर्तृतया निरूप्यते नवास्तवीवस्तुनितद्द्वयीकृत ॥
अवाच्यरूपासदमदूविलक्षणा विचक्षणामाकृतलक्षणापिमा।
नमामितांशक्तिमकर्तृतामयीं स्वतश्करोत्येवच कर्तृतामयीम्॥
निजेच्छयाकाण्डसमुद्भवाप्ययानुमानयादर्शितकर्तृतंशिवम्
नमाम्यभित्तावपि चित्रितं जगद् विचित्रमेतत्थनपेक्ष्यचेतसम्
ममेदमस्याहमहं मदक्रियः सदैव कर्तेत्यभिसन्धिपूरितम् ।
करोत्यकर्तारमुदारलीलया य उच्यतेनाथइतिश्रियेस्तुनः ॥
प्रसंगजंकर्तृपदंविहाययत् फणीवानिर्मोकमनायदास्थितम् ।
नमाम्यकर्तारमकर्तृतामयं यदस्तिमोऽस्मीत्यगुण स्वयंस्थितः

यस्यसाक्षादनुभव शास्त्रज्ञानेन तस्यकिम् ।
चेष्टास्वभावजास्त्रीणां कविभिर्वर्ण्यते श्रमैः ।

जातमात्रः पिबेद्वत्सो बालकोवाप्यपाठित ॥
यथामातुः स्तनंपश्ची न तथापाठितोपिसन ।
पिबन्तोऽप्यमृतं नित्यममरानामराइह ॥
सिद्धाऽनभूतात्रमरा गृह्णन्तोविषयानविषम् ।
ध्यानेनछिद्यमानंतु कर्मांकुरमुपाददे ॥
खड्गेनयोगछिन्नंतु यातिनिर्मलतांद्रुतम् ।
सचितंक्रियमाणं च कर्मनश्यतितन्मते ॥
प्रारब्धंन पुनस्तत्र प्रमाणं श्रुतिरुच्यते ।
भूतकालोद्भवंकर्म भट्टाः सत्यं प्रकुर्वते ॥
कालनितयजंकर्म त्यजत्यत्याश्रमीद्रुतम् ।
पत्रं पुष्पं फलंशाखा छिद्यतेपि पुनः पुन ॥
नयावच्छिद्यतेमूलं तावद्भूयः प्ररोहति ।
पुनः पुनर्भृतोधारा सूक्ष्मछिद्रेण संयुत ।
घनशोरिक्ततांयाति विफल श्रमएवम ॥
यातुगंगांगयांयातु नमन्त्वग्ममयान गुरान ।
च्छायालयंविभात्यंशे जगदात्मामासिम्मन ॥

संन्यासिनो विज्ञानन्तु कथयन्तु च पंडिता ।
अवधूताः क्रियासिद्धास्तत्र स्वरूपानिरञ्जना ॥
योगदेहं सृजन्त्येवं कालमांतं न वत्स्यथम् ।
हन्ति संशयिरं देहं तस्मात्स्वर्गेश्वर ॥
सृजत्यब्जो हरिः पाति हरः संहरते जगत् ।
तस्योऽन्यां मुक्तिदस्त्वत्र संरेनः सिद्धयोगिनाम् ॥
चतुर्भिः पथिभिर्यान्ति चत्वारो ज्योतिरालयं ।
योगिनो रुद्रिका लोकास्थास्त्रिशव्यनद्वाग्निः ॥
योगिनो योगयत्नेन केवलं ज्योतिरुत्तमम् ॥
इष्ट्वायान्तीष्टमार्गेण हुतं तन्त्वचगाडन ।
स्ववर्णाश्रमधर्मेण वैदिकाः समुपास्यतत् ।
निवृत्तिं परमां यान्ति तद्भूमाविरमानुपाः ॥
तान्त्रिकाः शुद्धविपार्गे विषयान् परिहायतत् ।
दुर्गमेनपथायान्ति जाराः सज्जनजनाः ॥
संसारिणस्तु संसारप्रलये प्राप्नुवन्तितत् ।
कृतयात्रमिवाधीशं सर्वलोका निरर्गलाः ॥

नकुर्याद्बुद्धिमान्प्रीतिं वृथावस्तुनिफल्गुनि ।
मृगतृष्णामयं माया जालंकिमन्यतेयत ॥
मोक्षशास्त्रकृतोनैव दृष्टामुनिजनानृपा ।
नीतिशास्त्रकृतःकान्ता शृङ्गारग्रन्थकारिका ॥
मूलंमोक्षस्यावधूतो नीतिमूलंनराधिप ।
कान्ताशृङ्गारमूलंयद् वाचारम्भणमास्तिन, ॥

भा० टी०—मनवाणी स परे होते हुए भी मनोवाङ्मय
[illegible]जी के ये पांच रूप हैं–ओम्–नाथ–शक्ति–कर्ता–अकर्ता इन
[illegible] स्तुति की जाती है ।

उस पद को अवाच्य कैसे कहा जा सकता है, और अचि
[illegible]य भा कैसे कहा जा सकता है जब कि योगी उसका चिन्तन
[illegible]ता है। इस लिये यह जो कुछ है मैं उसनाथ तेज को
[illegible]स्कार करता हूं। यह परम पद अकर्ता और कर्ता दोनों ही
[illegible]ार का है।

योगामृत से तृप्त चित्त वाले उसका ध्यान करते हैं उस
[illegible] कर्तृत्व और अकर्तृत्व वास्तव में दोनों ही नहीं हैं, क्योंकि
[illegible] वस्तु में दो बातें कैसे हो सकती हैं। जो सत्
[illegible]सत् से विलक्षण लिङ्ग रहित और लिङ्ग वाली है

समझने वाले सिद्ध पुरुष अमर हैं। ज्ञान से कटा हुआ कर्म फिर अङ्कुरित हो जाता है परन्तु योग से छिन्न हो जाने पर उस में अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता, वेदान्तियों के मत से सञ्चित और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाता है पर प्रारब्ध नहीं इस में वे स्वयं श्रुति का प्रमाण देते हैं भट्ट मत के अनुयायी मीमांसक लोग पहले के किये हुए कर्म सत्य कहते हैं, परन्तु अत्याश्रमी अवधूत उनको भी छोड देता है। वृक्ष की शाखा और पत्र पुष्प फलादिकों को कितनी वार काटो वह फिर उग आता है परन्तु जब मूल कट जाता है फिर वह नहीं उगता । जिस घड़े में सूक्ष्म छिद्र है उस में चाहे जितनी वार जल भरो वह खाली हो जाता है। और भरने वाले का श्रम व्यर्थ होता है । गङ्गा में स्नान करते हैं गया में जाते हैं और पत्थर की बनी हुई मूर्तियों की पूजा करते हैं परन्तु इस शरीर रूपी घर में जो जगदात्मा प्रकाशमान है उसे याद नहीं करते। संन्यासी भलेही जानते हों और पंडित उसे वेशक कहते हों परन्तु क्रिया सिद्ध अवधूत उसके विकार रहित रूप में तद् रूप होकर विराजमान रहते हैं। पिण्ड देह को महेश्वर नाथ उत्पन्न करता है, काल के मुख में पचाता और विषय रूप देह को नष्ट करता है। ब्रह्मा जगत् की उत्पत्ति विष्णु जगत् की रक्षा और हर जगत् का संहार करता है। इन तीनों से अन्य नाथ मुक्ति देता है यह

योगियों का संकेत है। योगी वैदिक तान्त्रिक और व्यावहारिक ये चारों ही चार मार्गों से उस ज्योति रूप धाम में पहुंचते हैं।

योगी लोग योग यज्ञ से उस उत्तम ज्योति को पूज कर पक्षियों के समान शीघ्र ही उस के पास पहुंच जाते हैं। तान्त्रिक लोग विषयों को धारण करके जैसे जार लोग जनता से परि पूर्ण मार्ग को छोड़ कर चलते हैं उसी तरह इस शुद्ध विपणि में दुर्गम पथ से जाते हैं। परन्तु संसारी लोग संसार के प्रलय में उसे प्राप्त होते हैं जैसे ग्राम लोग बड़ी यात्रा करके कष्टों से राजा तक पहुंचते हैं। बुद्धिमान् को व्यर्थ सार हीन वस्तुओं में प्रीति नहीं करनी चाहिये क्यों कि यह इस माया जाल को मृग तृष्णा के समान ही समझता है। मुनिजन और राजा लोग मोक्ष शास्त्र को नहीं बना सकते और शृंगार रस में मग्न रहने वाली स्त्रियां नीति शास्त्र को नहीं बना सकती, अपितु मोक्ष शास्त्र का मूल अवधूत ही है नीति का मूल राजा और शृंगार का मूल स्त्री है बाकी सब व्यर्थ बकवास है

मू०—एवंतेत्रयोऽपि क्रियायामेव प्रसन्ना क्रिया युक्तेति कथने नापि प्रसन्ना परन्तु ननु क्रिया रहित कथनेन प्रसन्नास्त्रयेण त्रयोऽपि पुरुषा· स्वसंग वर्जितास्तद् यथा—अवधूत इति विना·

नुभवेन शास्त्रारम्भकाः पुरुषा इति राजनीतिः । कर्तव्यता हीना भृत्या इति । स्त्रीजन इति । पुरुषा अर्थहीना पुरुषा इति । तांस्त्रीन् त्रयोहसन्ति । कथम् ? एकः कोऽपिपुरुषो मन्दकामः कस्यापिवैद्यस्य गृहेगत्वा तं प्रतिस्वचेष्टोक्ता तदावैद्येनोक्तं यत्नं करिष्यामीति तस्य वैद्यवधूः पार्श्ववर्तिनी सहसा जाता । तस्या अभिप्रायोऽयम् । अयंममभर्ता वैद्यःस्वयंमपि नपुंसकोऽन्यस्य कामोदय यत्नं कथंकरिष्यतीति स्वयमसमर्थो ऽन्यस्यार्थे पाकं करिष्यतीति प्रतारणामात्रमिति ॥

ब्रह्मभूतोमुनि र्व्यासो मिथ्यामायोपदेशत ।
कृतानेकपुराणोऽभूत्तस्मैमायै नमोस्तुते ॥
वशिष्ठादिमुनिव्रातस्त्यागस्यैवोपदेशाकृत् ।
स्वयमङ्गीकृतस्त्रीकस्तस्मै भोगायते नमः ॥
दासाः प्रेमातुराभक्ति पुरुषार्थं वदन्त्यहो ।
सशरीरगते चित्ते भक्तिः प्रेम्णासमंगता ॥
योगः स्मार्तो वैष्णवश्च धर्माभूपास्त्रयास्त्विमे ।
कर्मारिभ्यस्त्रिधाऽवन्ति स्वात्मदेशंतु सुस्थितम् ॥
वैष्णवो नृपतिधर्मो नित्यांमत्वा च संसृतिम् ।

कर्मद्विपः समाश्रित्य यातिस्वंदेशमात्मना ॥
स्मार्तस्तु नृपतिधर्मं सत्यंप्रारब्धमात्मगम् ।
कर्मारिभ्योगलिंदत्त्वा याति स्वंदेशमात्मना ॥
योगधर्मोनृपस्सर्वान् जित्वाधर्मद्विपांबली ।
मनश्च किंकरं कृत्वा यातिस्वंदेशमात्मना ॥

एतद्ग्रन्थेबहुशास्त्राणा प्रामाण्य दीयते । तत्तु अस्मदीयार्थं वा एतन्मार्गस्य शिष्याणा श्रद्धार्थंदीयतइतिनास्ति । अस्मिन्नर्थेतु योगशास्त्रस्यैवप्रामाण्यमेतच्छास्त्रज्ञानेन पूर्णम् । परन्तुवाञ्छिनाहितायभो अन्यग्रन्थान्तरेऽपिभवदीयनानामतान्तरेऽपि चायमेयमार्गश्रेष्ठ । सर्वस्य लक्ष्योऽवधूत एवेतिहेतुर्नतु सिद्धान्तार्थं । अस्मात्कस्यन्यप्रमाण उपेक्षेति ज्ञेयम् ।

भा०—इस प्रकार अनुभव के बिना शास्त्र रचना करनेवाले साधारणजन, राजनीति चलाने वाले राजा लोग, और शृङ्गार शास्त्र बनाने वाले, ये तीनों व्यावहारिक काम में ही खुश रहते हैं व्यवहार करना चाहिये बहुत अच्छा है ऐसे कहने से भी बहुत प्रसन्न होते हैं करने पर तो कहना ही क्या है। किन्तु व्यवहार अनित्य है इसका त्याग ही अच्छा है ऐसा कहने से तो खुश नहीं होते हैं। इसलिए

इन तीनों का सम्बन्ध अवधूत योगी छोड़ देते हैं। स्वयं जिसने अनुभव नहीं किया किन्तु उस विषय का शास्त्र बनाता है। जिन्होंने राजनीति अर्थात् कानून शास्त्र को बनाया किन्तु उसके संचालक कर्मचारी नही हैं। स्त्री और जो धनहीन पुरुष है इन तीनों को तीनों हंसते है। कैसे हंसते हैं इस पर एक दृष्टान्त दिया जाता है किसी एक धातुदोष रोगी ने किसी वैद्य के घर पर आकर वैद्य से अपना रोग कहा, तब वैद्य जी ने कहा, कि अवश्य मैं इसका उपाय करूंगा, यह सुन कर उसके समीप बैठी हुई वैद्य की स्त्री हंसने लगी, उसका अभिप्राय यह था कि मेरा पति वैद्य स्वयं नपुंसक हैं तब दूसरे के लिए कैसे कामोद्दीपन का उपाय करेंगे। जो स्वयं अपने लिये रसोई नहीं कर सकता वह कहे कि दूसरे के लिए रसोई करूंगा यह केवल ठगना है। यहां कोई माया की बड़ी विचित्र घटना को देख कर उस माया को नमस्कार करता है, जो माया सत्ता से रहित होते हुए भी परमेश्वर को अपने व्यवहार में शामिल कर लेती है; और हे माया देवी! तुमने ब्रह्मस्वरूप समाहितात्मा श्री व्यास जी को भी अपना उपदेश देकर अपने बनाए संसार के व्यवहार को दिखाने वाले पुराणों की रचना करवाई इसलिए तुमको

प्रणाम करता हूँ। और भी देखिये जिन वशिष्ठादि ऋषियों ने लोगों में त्याग का उपदेश दिया परन्तु अपने आप स्त्री आदि सांसारिक भोगों का संग्रह किया, अत: हे माये तुम्हारे भोग को नमस्कार है। उपासक लोग दास भाव से प्रेम म विह्वल होकर भक्ति को ही मोक्षादि पुरुषार्थ का साधन कहते हैं। परन्तु भक्ति तो शरीर में रहने वाले चित्त का धर्म है इसलिए वे प्रेम के जाल में पड़कर अपने स्वरूप बोध से वंचित रह जाते हैं। योग १ स्मार्त २ और वैष्णव ३ ये तीनों धर्मराजा के समान हैं, और कर्मरूपी शत्रुओं से अपनी रक्षा करते हैं किन्तु आत्मा तो वास्तव में सदा अपने स्वरूप में ही रहता है उसका नाश कहां इसलिए उसकी रक्षा की चिन्ता करना यह भी माया का ही धर्म है। अब आगे योग-स्मार्त और वैष्णव इन तीनों का क्रम से व्याख्यान करते हैं—जो वैष्णव राजधर्म है उसके अनुयायी संसार को सत्य मान कर कर्म रहित पुरुषों को भी विष्णु की शरण में पहुंचा देते हैं। दूसरे जो धर्मशास्त्र राजधर्मावलम्बी हैं वे प्रारब्ध को सत्य मान कर अपने पापों को नष्ट करने वाले देवताओं को बलि देकर अभीष्ट लोक को चले जाते हैं। तीसरे बली योग धर्मावलम्बी पुरुष सब धर्म इन्द्रियों को जीत कर और मन को

जीत कर अर्थात् मन को अपना दास बना अपने अभीष्ट लोकों को प्राप्त होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त जितने साधन हैं, यह सब माया का खेल है अतः जब तक माया वश में नहीं होती तब तक मुक्त नहीं कहा सकता।

इस ग्रन्थ में अनेक शास्त्रों का प्रमाण दिया जाता है। यह हमारे लिये अथवा इस मार्ग में रहने वाले शिष्यों की श्रद्धा के लिये दिया जाता है ऐसा नहीं समझना। क्योंकि इस विषय में योग शास्त्र को ही सर्वोत्तम प्रमाण माना जाता है, यह शास्त्र समस्त ज्ञान का भंडार है किन्तु वादियों के कल्याण के लिये कहा जाता है कि अन्य ग्रन्थों में और अन्य मतों में भी योगमार्ग ही श्रेष्ठ है। और सबका अन्तिम लक्ष्य अवधूत ही है यह युक्ति बताई जाती है न कि अपना सिद्धान्त क्योंकि हमको अन्य प्रमाणों की ज़रूरत नहीं।

सू०—अवधूतशिष्यविनेतरसाम्प्रदायिकशिष्या मुग्धावर्तन्ते अवधूत सम्प्रदायस्यइयं रीतिः, पट्त्रिंशल्लक्षणसम्पन्नोगुरुर्द्वात्रिंशल्लक्षण सम्पन्नः शिष्यस्ततश्चतुर्लक्षणन्यूनः। गुरुशिष्यलक्षणञ्च—अधिक तत्त्वोगुरुर्न्यूनतत्त्वः शिष्यः। एतादृङ्न्यूनत्वंतुयोग्यंनतु मूर्खशिष्योधिकलक्षणहीनो मोक्षमार्गभवेत्। पुराणे शौचक्रियादि करणपर्यन्तक्रिया उपदिशतीतितन्महासिद्धा हसन्ति। अहोबुद्धि·

मंत्तः शिष्यास्तान् गुरून् एतादृक्क्रिया अपि कथयन्ति। शिष्यस्यबुद्धेः पराऽवधिरिति। एतादृश शिष्यकरणेगुरूणां दोषः प्रवर्तते। अतएवमहासिद्धावहून्दीक्षितान् न कुर्वन्ति। कथं ? यद्दयोविवेकिनोनभवन्ति। यथास्त्रियां भ्रष्टायां पत्युर्लज्जा तथाशिष्ये भ्रष्टे गुरूणांलज्जानिन्दापातकं च प्रवर्तते। अतएवबहुदीक्षिता आचार्या गुरवस्त्याज्याः, महासिद्धएवगुरुःकर्तव्यः। महासिद्धैरपि चतुर्लक्षणन्यूनश्शिष्यः कर्तव्योबहवश्च शिष्यावर्जनीयाः इति सिद्धान्तः।

भा०—अवधूतों के शिष्यों की अपेक्षा इतर सम्प्रदायों के शिष्य निकृष्ट होते हैं। अब आगे अवधूत सम्प्रदाय की मर्यादा बताई जाती है—

छत्तीस लक्षणों से युक्त गुरु होते हैं और बत्तीस लक्षणों वाले शिष्य, फरक इतना है कि चार लक्षण कम होने से शिष्य कहलाता है, गुरु और शिष्य का लक्षण ही ऐसा है कि जो अधिक लक्ष्य लक्षणवाला है वह गुरु और कम लक्षण वाला शिष्य होता है शिष्य में इतनी ही न्यूनता उचित है बिल्कुल मूर्ख होना ठीक नहीं। गुरु की अपेक्षा न्यून लक्षण वाला शिष्य मोक्ष का भागी हो सकता है। पुराणों में शौच आदि

बाह्यक्रियाओं का उपदेश दिया गया है, उसको महासिद्ध कहते हैं। परन्तु आश्चर्य की बात है कि बुद्धिमान् शिष्य उन गुरुओं को ऐसे कर्मों का उपदेश देते हैं, इससे भी शिष्य की ही बुद्धि बड़ी हुई। ऐसे बकवादी शिष्य बनाने में गुरुओं को दोष लगता है। इसी लिये महासिद्ध बहुत शिष्य नहीं बनाते क्योंकि उनमें सभी विवेकी नहीं होते जैसे स्त्रियों के भ्रष्ट हो जाने से पति लज्जित होता है ऐसे ही शिष्यों के भ्रष्ट होजाने से गुरु को लज्जा आती है तथा निन्दा और पाप भी होता है। अतः बहुत शिष्य बनाकर उनके सुधार में ध्यान न देने वाले गुरुओं को भी छोड़ देना चाहिए। महासिद्ध को ही गुरु बनाना चाहिये। महासिद्धों को भी चाहिये कि चार लक्षणों से हीन चेला बनावें बहुत शिष्य न बनावें यही सिद्धान्त है।

अथ शिष्यस्य द्वात्रिंशल्लक्षणानि लिख्यन्तेप्रथमतोज्ञानपरीक्षा निरालम्बः १ निर्भ्रमः २ निवासी ३ निःशब्दः ४। विवेकपरीक्षा—निर्मोहः ५ निर्भयः ६ निरांकः ७ निर्विषयः ८ सर्वांगी ९ सावधानः १० सत् ११ सारग्राही १२ निरालम्ब परीक्षा—निष्प्रपंचः १३ निस्तरंगः १४ निर्द्वन्द्वः १५ निर्लेपः १६। सन्तोषपरीक्षा—अयाचकः १७ अवांछकः १८ अमानः १९

अस्थिरः २० शीलपरीक्षा—शुचिः २१ संयमी २२ शान्तः २३ श्रोता २४। सहज परीक्षा—सुहृत् २५ शीतलः २६ सुखदः २७ स्वभावः २८ अष्टमे शून्यपरीक्षा – लयः २९ लक्ष्यम् ३० ध्यानम् ३१ समाधिः ३२ इति द्वात्रिंशल्लक्षणानि शिष्यस्य समाप्तानि ॥

भा०—अब शिष्यों के बत्तीस लक्षण जो कि शिष्यों के लिये आवश्यक हैं नीचे लिखे जाते हैं, इन बत्तीसों में से आठ वस्तुओं की परीक्षा होती है। उन आठों में एक एक में चार २ विषय हैं इसलिये मिलाने पर आठ चौक बत्तीस होते हैं। इन नामों का अक्षरार्थ करने से ही उनके सब लक्षण होजाते हैं, उन में पहले ज्ञान की परीक्षा है—निरालम्ब, सहायता शून्य अर्थात् जो देशकाल महनारा शरीर आदि आश्रय न करके केवल गुरु के उपदेश द्वारा अदृश्य पद् चक्रादि को जानने वाला। यह पहली परीक्षा है। दूसरा निर्भ्रम २ अर्थात् भ्रम-रहित। निवासी ३ जिसमें ज्ञान स्थिर रहे। निःशब्द ४ संज्ञा-रहित केवल अर्थ के जानवाला। अब अविवेक परीक्षा में चार बताए जाते हैं—सर्वाङ्गी १ लक्ष्य के प्रत्येक अवयव सहित अर्थात् लक्ष्य के चारों तरफ ध्यान रखने वाला।

सावधान ? लक्ष्य पर डटने वाला। सत् ३ सत्स्वरूप अर्थात् कुतर्की न हो। सारग्राही ४ उपयुक्त विषय ग्रहण करने वाला। अब संतोष में चार दिखाये जाते हैं—अयाचक १ सिवाय तत्त्वज्ञान के किसी से किसी चीज की याचना न करने वाला। अवांछक ? जिनके मन में सांसारिक वस्तुओं की वासना न हो। अमान ३ जो धन विद्या बल आदि के घमंड से शून्य हो। अस्थिर ४ किसी स्थान में आसक्ति न करने वाला। अब शील की परीक्षा में चार दिखाये जाते हैं— शुचि १ स्नानादि द्वारा बाह्य शुद्धि और पवित्र अन्नादि के भोजन से अन्तःशुद्धि तथा पवित्र मन वाला। संयमी २ सांसारिक विषयों से जिसने इन्द्रियों को हटा लिया है। शान्त ३ सब अवस्थाओं में धीर रहने वाला। श्रोता ४ अध्यात्मविद्या में प्रेम रखने वाला। अब सहज परीक्षा का वर्णन किया जाता है—सुहृत् १ सब सज्जनों से प्रेम रखने वाला और दुर्जनों से उदासीन रहने वाला। शीतल २ अपराध करने पर भी द्रोह बुद्धि न रखने वाला। सुखद ३ सज्जनों को सुख देने वाला। स्वभाव ४ जिसका आचरण किसी के विरुद्ध न हो। अब शून्य अर्थात् विरक्तता की परीक्षा में भी चार कहे जाते हैं— लय १ किसी में मन की वृत्ति न रखना। लक्ष्य २ अपने ध्येय का निश्चय।

ध्यान है उस लक्ष्य के स्वरूप में चित्त को लगाना। समाधि ४ जिसमें मैं ध्यान करता हूँ इस प्रकार ध्याता और ध्येय आदि भेद भाव के छूटने से निश्चल दीप शिखा की तरह केवल ध्येय का ही भान हो। ये सब मिलाने से शिष्यों के ३२ लक्षण होते हैं सो समाप्त हो चुके।

मू० अद्वैतोपरिवर्तिनाथ उदितोयत्र ध्वनिस्सन्ततो।
नादोबिन्दुरथापि शक्तिरुदितामाचार्द्धमात्रात्मिका ॥
ऊ रुद्रोहरिरोविधिर्मितिसमेध्येयोऽस्तुनित्यंमहान्।
ओङ्कारोऽखिलशब्दबीजमबुधरज्ञातरूपोमुदे ॥

अयमोङ्कारो महासिद्धानां ध्येयः, तस्यस्वरूपम्—उकारोऽत्ररुद्रस्वरूपमर्धमात्राशक्तिस्वरूपं बिन्दुर्नाथस्वरूपमर्धमात्रयाजातोऽकारोविष्णुस्वरूपंबिन्दोर्जातोमकारोब्रह्मस्वरूपं ध्वानिर्निराकारनाथस्वरूपं व्यापकंध्वनिर्वर्णथोभयमपिमिलितं पूर्णं यद्द्वैताद्वैतविलक्षणं साकारनिराकारातीतमद्वैतोपरिवर्ति महानाथस्वरूपमिति। किंचात्रोङ्कार उंकार बिन्द्वर्धमात्रयोर्योगादेव। बिन्दुयोगान्मकारोऽर्धमात्रायोगादकार इति। तथा चोङ्कारे नाथशिवशक्तिरूपप्राबल्यंविष्णु

ब्रह्मरूपयोरप्राबल्यम् अतएवात्रैतद्देवतात्रय ध्यानंमहासिद्धै मुख्यत्वेन क्रियते पुनर्ध्वनिर्निराकारनाथरूपंध्वनिर्वर्णश्चो भयात्मकः पूर्णनाथस्तुसाम्प्रतमस्तितथास्त्येवेति ब्रह्म विष्णु ध्यान तोनाथशिवशक्तनोध्यान युक्तमयुक्तम् ,तत्रापि नाथ ध्यानं बलिष्ठम् उकारो यथोकारः स्यात्तदामात्र शक्त्यैव उकरोपि यथोङ्कारः स्यात्त हिंविन्दु शक्त्यैवबिन्दुर्यद्यापिवर्ण-स्तथापि तत्र स्वरस्याधिक्यंस्वरश्च वर्णापेक्षयाबलवानेव ।

कथं ? तत्रध्वनिभागस्याधिक्यात् ध्वनिश्च नाथरूपमेव, अतोनाथध्यानं बलिष्टमित्युक्तम् । तदुक्तं योगशास्त्रे—

ब्रह्मग्रन्थिंततोभित्वा विष्णुग्रन्थिंभिनत्त्यसौ
विष्णुग्रन्थिं ततोभित्वा रुद्रग्रन्थिंभिनत्त्यसौ ॥
रुद्रग्रन्थिंततोभित्वा छित्वामोहमयींलताम् ।
उद्घाटयत्यथवायु ब्रह्मद्वारंसुगोपितम् ॥

इत्यादि—

भा० टी०—अद्वैत के ऊपर नाथ है अर्थात् कार्य रूप दृश्य मान स्थूल जगत् और इसका कारण सूक्ष्म रूप प्रकृति और इसकी समष्टि ये कार्य कारण के अभेद होने से अद्वैतपद मे

लिये जाते हैं। उसके ऊपर अर्थात् एक व्यापक और एक व्याप्य वस्तु है वहां आपस में ऊपर कहने का व्यवहार हो सकता है जैसे आकाश के ऊपर पृथिवी और पृथिवी के ऊपर आकाश ऐसे ही यहां अखण्ड नाथ जी परिच्छिन्न संसार के ऊपर हो सकते हैं और नाथ के ऊपर संसार भी कहा जा सकता है। नाथजी स्वयं अखण्ड चिद्रूप हैं और उनकी शक्ति भी चिद्रूपा है जिस में ध्वनि अर्थात् स्फोट रूप शब्द ब्रह्म नाद अर्थात् संसार के उपादान कारण शक्ति का सम्बन्ध, बिन्दु रूप संसार को बनाने वाली आदि प्रकृति में नाना सृष्टि करने वाली शक्तियां प्रकट होती हैं यह शक्ति ओंकार को अर्धमात्रा रूप अर्थात् ऊपर की अर्धमात्रा उस शक्ति का लक्षक है, अकार विष्णु का उकार रुद्र का मकार ब्रह्मा का वाचक है इन सब का समुदाय अधिष्ठान रूप अखण्ड सच्चिदानन्द समस्त शब्दों का कारण साधारण पुरुषों से अज्ञात ओंकार परमानन्द के लिये मेरा ध्येय हो ऐसी धारणा करनी चाहियें। यह ओंकार महासिद्धों का ध्येय है। उसका स्वरूप इस प्रकार है उस में जो उकार है वह रुद्र रूप है।

अर्धमात्र शक्ति रूप है बिन्दुनाथ रूप है आधी मात्रासेउत्पन्न

अकार विष्णु रूप है और विन्दु से उत्पन्न मकार ब्रह्मा है इन में ध्वनि निराकार नाथ रूप और वर्णरूप भी है वह सबका समुदाय परिपूर्ण कहाता है जो कि द्वैत अद्वैत से विलक्षण साकार निराकार दोनों से अतीत है इस लिये अद्वैत के ऊपर वर्तमान श्री महानाथ स्वरूप है। ओंकार जो है यह उकार विन्दु और अर्धमात्रा इनके योग से ही होता है। अनुस्वाररूप विन्दु से मकार होता है इसी लक्ष्य को लेकर व्याकरण में स्वर के परे होने पर अनुस्वार को मकार कर दिया जाता है और लय दशा में मकार का अनुस्वार कर दिया जाता है अर्धमात्रा के सम्बन्ध से अकार होता है। इस से स्पष्ट होरहा है कि ओंकार में विन्दुरूप श्रीनाथ जी, अर्धमात्रा श्रीशक्ति, और उकार, तेज स्वरूप रुद्रये प्रधान हैं, अकाररूप श्री विष्णुजी और मकार रूप श्री ब्रह्माजी अप्रधान हैं परन्तु प्रणव पंचदेवात्मक ही है महासिद्ध लोग तो इस में प्रधान रूप से पूर्वोक्त नाथ-शक्ति-और रुद्र इन तीनों देवों का ही ध्यान करते हैं।

ध्वनिरूप निराकार और वर्ण इन दोनों का समुदाय परिपूर्ण स्वरूप आदिनाथ जी प्रलय में जैसे विकार रहित रहते हैं वैसे ही सृष्टि समय में भी अविकृत रूप से रुद्र स्वरूप हैं इसी लिये ब्रह्मा और विष्णु के ध्यान से नाथ, शिव, और शक्ति इन

तीनों का ध्यान बड़ा कहा गया है। इन तीनों में भी नाद का ध्यान विशिष्ट है। उकार जब मात्रा शक्ति का सम्बन्ध करता है तब ओंकार रूप हो जाता है। और जब बिन्दु रूप से सम्बन्ध करता है तो ओंकार रूप हो जाता है। बिन्दु भी यद्यपि वर्ण है तथापि उस में स्वर का भाग अधिक है, स्वर वर्ण से बलवान् है इस लिये स्वर के बिना वर्ण का उच्चारण नहीं होता। क्यों कि? उस में ध्वनि भाग अधिक है और ध्वनि नाद रूप है इस लिये नाद का ध्यान बलवान् कहा गया है।

यही योगशास्त्र मे भी कहा है—

पहिले ब्रह्म गांठ अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र का भेदन करे फिर विष्णुग्रन्थि अर्थात् मणिपूर चक्र को भेदन करे, उसके बाद रुद्रग्रन्थि जो हृदय में अनहत चक्र है इसके बाद कण्ठदेशस्थ विशुद्ध चक्र में अविद्या जीव शक्ति की ग्रन्थि का भेदन करके रोके हुए प्राणवायु द्वारा आज्ञा चक्र रूप ब्रह्म द्वार में ज्ञान शक्ति के द्वार को खोल कर उसको प्राप्त कर लेता है।

मू०—योगसम्प्रदाये विनासर्वमतेविपरीतावार्त्ता वर्तते, कथं? नाथांशोनादोनादांशः प्राणः शक्त्यंशो बिन्दुर्बिन्दोरंशः शरीरम्, एवञ्च योग सम्प्रदाये शिष्योधिको यो नादांशोज्ञायते-ऽन्यमते पुत्रोऽधिकः कथ्यते। सचाधिकः कथं भवेत्। कथं वपुर्वि-

न्दुतो जानम् । पुनः पुनः नादांशः प्राण उक्तो बिन्दुंशः शरीरमुक्तम् तत्रापि प्राणान्छरीरमुत्तिष्ठति शरीरस्याधारः प्राणोभवति । तथाच नादस्यात्मजशिष्यएवाधिक इति । अन्यच कथ्यते—

जनिता चोपनेता च यस्तुविद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्रातापंचैते पितरः स्मृताः ॥

राजपत्नीगुरोः पत्नी मित्र पत्नी तथैव च ।
पत्नीमातास्वमाता च पंचेत्तामातरः स्मृताः ॥

इत्येतत्कथने प्राधान्यपित्रोरेवायातितत्समीचीनं न भवति । इयंरीतिः सांसारिकी नतु पारमार्थिकी वार्ता अतः कारणाद्गुरुरेवमुख्योनादात्मजः शिष्य एवमुख्य इति सिद्धान्तः किं च धर्मोर्थःकामोमोक्ष इति ब्रह्मचर्यगार्हस्थ्यवानप्रस्थःसन्यासइतिः शृंगारोहास्यकरुणोरौद्रोवीभत्सोभयानकोद्भुतंशान्त इति । पृथ्वीआपस्तेजोवायुराकाश इति ब्रह्मा विष्णुरुद्रादिश्च । एतत्प्रक्रियायाभ्रनुक्रमोनास्ति किन्तुव्यतिक्रमो वर्तते । किन्त्वनुक्रमस्त्वेवं रीत्या मोक्षोधर्मोऽर्थः कामः सन्यासोवानप्रस्थोगार्हस्थ्यब्रह्मचर्यम् । शान्तःकरुणोऽद्भुतं वीरोरौद्रोहास्यंभयानकोवीभत्सः शृंगारः । आकाशाद्वायुर्वायोस्तेजस्तेजसो जलं जलात् पृथिवी । पुनः शिवाद्भैरवो भैरवाच्छ्री कंठः श्रीकं-

ठात् सदाशिवः सदाशिवात् ईश्वरः ईश्वराद् रुद्रोरुद्राद्विष्णुर्विष्णो-र्ब्रह्मा। इतीयं योगसंप्रदायरीतिः, साएवतांत्रिकी। परन्तु शिव भैरव श्रीकंठेति देवत्रयक्रमःसूत्रे नं गृहीतः पञ्चैवदेवता सदाशिवादयोः गृहीतास्तत्रापि पौराणिकेवैदिके देवतात्रयमेव गृहीतम्, तत्क-थ्यते—ब्रह्माविष्णु, रुद्र इति पुराण प्रक्रिया ब्रह्माविष्णु,ः-रुद्र ईश्वरः सदा शिव एषा तांत्रिकी प्रक्रिया॥

अवधूतैः कथ्यतेएषाप्रक्रियाकुत आगता सर्वायोगादेवागता, यतः सर्वस्यकारणं योगएव प्रवर्तते यतोऽवधूताद्भिक्षुकोजातो-भिक्षुकाद् ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणो गृहस्थोजातः। कथं ? एकैकगुण लक्षण हीनो ह्रासक्रमेण सम्भूतं सन्तानमेवेति मन्ये। प्रथमतो गौणमुख्य प्रक्रियाकथिता, तत्रकाचिद् उत्पत्तिक्रमतो मुख्यागौणी-या ज्ञेया, काचिच फलदृष्टरीत्यामुख्यागौणीवेतिज्ञेया। एकदा महासिद्धश्रीगोरक्षनाथशिष्येणसिद्ध विचारनाथेन भर्तृहरि नृपेण व्याकरणशास्त्रोपरिलक्षसंख्याःकारिकाःकृताः, नागेशेनताः श्रुताः। तदाप्रसन्नो भूत्वा ब्रह्माण्डेविहरन् समागतो यत्तत्र स्थितोमहाव-धूत आगत्यचादेशादिव्यहारकरणानन्तरं तेनोक्तमहो स्वामिन्न हंतुष्टोस्मि यतः कांचित्याचनांकुरु। तदामहासिद्धेनोक्तंतव मिलने सुखंजातमन्यत्तु नास्त्यपेक्ष्यंकृतकृत्य एवास्मि। पुनः पुनस्तेनशेषे-

णोक्त याचनीयमेवेति । तदा भर्तृहरिणोक्तं किं याचेयदैश्वर्ये च्छा भवेत्तत्तुमहाराज्यंत्यक्त्वाऽवधूतोजातः पुनर्मोक्षस्यदि-वांछाभवेत् सातु अवधूतभावे सिद्धत्येवसंशयो नास्तीति । तदा शेषेोऽसन्तुष्टोभूत्वाममापमानःकृतोऽत. शापंददामि, भवदीयका-रिका. प्रसिद्धानभविष्यन्तीति । तदाऽवधूतेनाप्युक्तं त्वदीयकृत व्याकरणशास्त्रकलौपूत्त्यर्थं भविष्यति, पुनर्यत्रकुत्रापिस्थलेसंशयो भविष्यतितदाममकारिका विनानिर्णयोन भविष्यतीति । एवं परस्पर शापोजातः, तेनाऽऽधुनिकसमयेव्याकरणादिसाधनशास्त्रं परमार्थेन्यूनं भवतिचातुर्यादिप्रकारः प्रायशोभवतीति ।

भा० योग सम्प्रदाय को छोड कर अन्य सब मतों में विप-रीत बातें प्रचलित हो रही हैं। कैसे ? नाथ जी का अशनाद है जिस का अंश इस शरीर में प्राण रूप है उसके ऊपर नाथ जी शासन करते हैं अत प्राण शिष्य और नाथ जी उस के आचार्य है। शक्ति का अशबिन्दु है, बिन्दु का अंश शरीर है यह उत्पन्न होने से पुत्र कहलाता है। इस योग सम्पदाय में प्राण वायु का विशेष महत्व है, अन्य मतों में पुत्र रूप शरीर अधिक माना जाता है इसी लिये वे शरीर का ही संस्कार प्रधान रूप से करते हैं। प्राण का अधिक महत्व कैसे है सो दिखाते हैं—शरीर

बिन्दु से होता है प्राणनाद का अंश है यह बार बार कहा जा चुका है, प्राण से ही शरीर बढ़ता है और आना जाना बैठना खड़ा होना इत्यादि व्यवहार भी शरीर से ही होता है। शरीर का आधार भी प्राण है, इस लिये शिष्य रूप नादांश प्राण ही अधिक है। इसी विषय में और भी कहा जाता है—जन्म दाता १ यज्ञोपवीत संस्कार कर के गायत्री मन्त्र देने वाला २ शास्त्र पढ़ाने वाला अन्न देने वाला ४ भय से रक्षा करने वाला ५ ये पांच पिता कहे जाते हैं राजा की स्त्री गुरु की स्त्री मित्र की पत्नी अपनी स्त्री की माता और अपनी माता ये पांच माताएं होती हैं। इस कथन से माता और पिता ही प्रधान होते हैं यह ठीक नहीं है क्योंकि यह मर्यादा सांसारिक व्यवहार में है, परमार्थ में नहीं, इस लिए परमार्थ में पिता की अपेक्षा गुरु ही मुख्य है इसी तरह पुत्र की अपेक्षा शिष्य मुख्य है यह सिद्धान्त है।

लोक में धर्म अर्थ काम मोक्ष,इस प्रकार व्यवहार होता है, इस से प्रतीत होता है कि धर्म प्रधान होने से पहले कहा गया है और मोक्ष अप्रधान होने से पीछे कहा है। इसी तरह ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य वानप्रस्थ सन्यास, तथा शृंगार हास्य-करुणरौद्र बीभत्स भयानक अद्भुत शान्त, इन दोनों दलों में

ब्रह्मचर्य और शृंगार को प्रधान माना जाता है। इसी तरह पृथ्वी जल तेज वायु आकाश तथा ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन में पृथिवीऔर ब्रह्मा को प्रधान माना जाता है किन्तु यह सबक्रम उलटा है, वास्तव में तो उन पूर्वोक्तों में मोक्ष संन्यास-शान्त आकाश रुद्र ये ही प्रधान हैं इसलिये ऊपर का क्रम उलटा होना चाहिये अर्थात् मोक्ष धर्म अर्थ काम संन्यास वानप्रस्थ ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य, शान्त करुण अद्भुत वीर रौद्र हास्य भयानक वीभत्स शृङ्गार, आकाश वायु तेज जल पृथिवी इस क्रम से। इसी लिये योग सम्प्रदाय की यह रीति है कि शिव से भैरव प्रकट हुआ, भैरव से श्री कंठ श्रीकण्ठ से सदाशिव सदाशिव से ईश्वर ईश्वर से रुद्र रुद्र से विष्णु विष्णु से ब्रह्मा, यही रीति तंत्र की भी है। परन्तु सूत्र ग्रन्थ अर्थात् संहिता में शिव भैरव और श्री कंठ इनतीन देवों का क्रम नहीं कहा है, किन्तु सदा शिव १ ईश्वर २ रुद्र ३ विष्णु ४ ब्रह्मा ५ इन्ही पांच देवों का क्रम कहा है, उस में भी पौराणिक और वैदिक ग्रन्थों से रुद्र १ विष्णु ब्रह्मा ३ इन तीन ही देवों का क्रम संक्षेप से बताया गया है। ब्रह्मा १ विष्णु २ रुद्र ३ यह पुराणों का क्रम है, और ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर सदा शिव यह तंत्रों का क्रम है। इस पर अवधूत कहते हैं—कि यह क्रम कहां से आया? यह सब योग से ही आया अतः सब का कारण योग ही है। इसी लिये अवधूत से

भिक्षुक हुआ भिक्षुक से ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी से गृहस्थ। कैसे? एक एक गुण लक्षण हीन होकर ह्रास के क्रम से जो हुआ है उसको सन्तान ही मानता हूं। पहले गौण और मुख्य क्रम कहा गया है, उनमें से किसी का उत्पत्ति क्रम से मुख्य या गौण जानना चाहिये। अथवा जैसे कोई उद्देश्य रूप होने से फल को मुख्य और साधन रूप होने से वृक्ष को गौण कहते हैं। कोई कोई वृक्ष को कारण रूप होने से मुख्य और फल को कार्य रूप होने से गौण कहते हैं। यहां पर अपने २ अभिप्राय के अनुसार दोनों ही ठीक हैं, बहुत से तो गार्हस्थ्यादि को कारण होने से मुख्य ओर अवधूत को साध्यरूप होने से गौण कहते हैं, ज्ञानीलोग तो साधन होने से गार्हस्थ्यादि को गौण फल होने से अवधूत को ही मुख्य कहते हैं। एक समय महा सिद्ध श्रीगोरक्षनाथशिष्य विचारनाथ श्री भर्तृहरि राजा ने व्याकरण महाभाष्य के ऊपर एक लाख कारिकाएं बनाई इस समाचार को पतञ्जलि भगवान् सुनकर बड़े खुश हुए और ब्रह्माण्ड में विचरते हुए वहां आये जहां अवधूत श्री भर्तृहरि जी बैठे थे। वहां आकर सनातन रीति से नमस्कारादि व्यवहार करने के बाद कहा कि हे स्वामिन् आपके कार्य से मैं बड़ा प्रसन्न हूं अतः आप मुझ से कोई वर मांगो। तब महासिद्ध ने कहा कि आपके मिलने से ही मैं नितान्त प्रसन्न हूं इस से

अधिक कुछ नहीं चाहिये, मैं तो आपके दर्शनों से कृत कृत्य होगया। फिर पतञ्जलि ने कहा कि अवश्य कुछ न कुछ मांगना ही होगा। तब भर्तृहरि ने कहा मैं क्या मागूं यदि मैं ऐश्वर्य चाहूं यह भी अनुचित है क्योंकि मैं साम्राज्य पद को छोड़कर अवधूत होगया हूं, अगर मोक्ष की इच्छा करूं तो भी ठीक नहीं क्योंकि वह तो अवधूत होजाने से हो ही गया है। उसमें कुछ सन्देह नहीं है। अतः मुझे किसी वस्तु के मांगने की आवश्यकता नहीं है। भर्तृहरि के इस प्रकार के वचन से पतञ्जलि जी अपना अपमान समझकर असन्तुष्ट होगये और शापदिया कि तुम्हारी कारिकाएं लोक में प्रसिद्ध नहीं होंगी उस पर अवधूत भर्तृहरि ने भी कहा कि आपके व्याकरण शास्त्र को कलियुग में लोग जीविका के लिये पढ़ेंगे न कि धर्मबुद्धि से और जहां कहीं उसमें सन्देह होगा तो मेरी कारिकाओं को छोड़कर अन्य प्रकार से उस का निश्चय नहीं होगा। इसप्रकार एक ने दूसरे को शाप दे दिया। इस लिये आजकल व्याकरणादि शास्त्र को परमार्थ सिद्धि में न लगा कर अधिकतर लौकिक चतुरता में ही उसका उपयोग समझते हैं।

'मू०— आचार आचार इतिवदन्ति, य आचारोऽत्याचारःसन्कथंनिर्वहन्ति भोजनेयद्धृतंतत्तुचर्मपात्रेणैवा-

याति। गमनेयत्पादत्राणं तदपिचर्मजमेव, स्पृश्यते शयने स्त्रीसंगोभवतितस्यकथैवका। प्रातःकाले यद्यपिशुध्यर्थंस्नानं क्रियतेतथापिचतुर्थप्रहरेपुकरादिकस्यगुह्यादिस्पर्शनं स्वभावतएव सर्वदाजायते। किंचसूर्यादिग्रहणे मृत्तिकापात्राणि जलंचाऽशुचित्वेन, त्यज्यन्तेनतुधान्यघृतादिकंवस्तु।

तदाएवंज्ञायते जलाशयेजलं यद्दुलभ्यतेकुलालानांगृहेषु मृत्पात्राणिचाल्पव्ययेन लभ्यन्ते, तेनतदशुचित्वं कथं न क्रियते ? घृतधान्यादिनिवारणेतु बहुद्रव्यव्ययोभवेदित्याद्यनेकप्रकारकंकिंकिंलिख्यते। तस्मादाचारवस्तुकल्पितमेव-तद्बुद्धिमन्तोजना न किंचिदपिवस्तुजानान्ति विचारएवमुख्य इतिसिद्धान्तः। तत्रचैवंनश्रेयमत्रसिद्धान्त आचारोनास्तीति। कथं ? आचारोऽस्माकंमतेनरतेति, मत्र विचारपूर्वकइति। अन्यआचारंकुर्वन्ति तादृशन्तुक्रियते एवनास्ति, यथायोग्यस्तुक्रियतेसचापिगौणंमत्वाक्रियते, मुख्यस्तुतत्त्वविचारइति कृत्वाऽयमपिव्यवहारः सर्वथात्याज्योनास्तीति।

भा०— लोग आचार आचार इस प्रकार चिल्लाते हैं परन्तु यह आचार अनाचार है ऐसा कहते हैं लोकमें जो घी है

घेह भी चाम के पात्र अर्थात् कुप्पों, में ही आता है, चलने के समय जो जूता पहना जाता है वह भी चमड़े का ही है। और सोने के समय जो स्त्री का संग होना है उसका तो कहना ही क्या है, प्रातः काल यद्यपि शुद्धि के लिये स्नान किया जाता है तो भी दिनभर में अशुद्ध अगों का हाथ से स्पर्श होता ही रहता है। और सूर्यग्रहण आदि पर्व के समय मिट्टी के वर्तन घड़े वगैर अशुद्ध समझकर फेंक दिये जाते हैं परन्तु अन्न और घृतादि वस्तुओं को कोई नहीं त्यागता, इससे यह सिद्ध होता है कि तालाब आदि में जल बहुत मिलजाता है और कुम्हार के घर से मिट्टी के वर्तन भी थोडे मूल्य में मिल जाते है। इसलिये उनको अपवित्र समझ कर त्याग देते हैं परन्तु घृत धान्यादिके त्यागने से बहुत हानि होती है अतः उनको पवित्र मानलेते हैं इत्यादि अनेक प्रकार है क्या क्या लिखें इस लिये आचार भी कल्पित है इस कारण बुद्धिमान् अर्थात् तत्त्व वेत्ता लोग, व्यर्थ वस्तु को महत्व नहीं देते उनके मन में विचार ही मुख्य है यही सिद्धान्त है। यहां यह न समझ लेना कि इस सिद्धान्त में आचार नहीं है, हमारे मतमें आचार है किन्तु विचार पूर्वक है अन्धपरम्परा नहीं है। अन्य लोग जैसा आचार करते हैं वैसा हम नहीं करते। हां गौण मानकर

हम भी यथायोग्य कर लेते हैं किन्तु मुख्य तो तत्व विचार ही है ऐसा समझ कर हम आचार व्यवहार को भी बिल्कुल त्याज्य नहीं मानते।

मू०—आचारविधिः। प्रातरुत्थाय गुरुस्मरणं कृत्वा कालं स्मृत्वा शौचादि क्रिया दन्तधावनं स्नानं च कृत्वा नाथालये गत्वा पूजा कर्तव्या, पूजानन्तरं भोजनं कर्तव्यं सायंकाले च हस्तादिकं प्रक्षाल्य सायंकालोचित रीत्या पूजा कर्तव्या शौचं चैकादशवारंमृत्तिका जलेन हस्त प्रक्षालनं स्नानं चैक कुम्भजलेन वा एष आचार इतरस्त्वत्याचारोनिषेध एव, किमर्थं वृथाकार्ये गौणकार्ये समय नयनं क्रियते तेन च मुख्यकार्याऽनवसरो भवेत्, खेदं च प्राणहरणं भवेत्। प्राणरक्षां विना मनःस्थिरं न भवेत् मनःस्थैर्यं विना कदापिकाले मोक्षो न भवेत्। अतःकारणाद् महासिद्धा योग एव तिष्ठन्ति नत्ववास्तविके भ्रमन्तीति।

भा०—अब आचार बताया जाता है—प्रातःकाल उठ कर गुरु का स्मरण और समय का विचार करके शौचादि क्रिया करे फिर दन्तधावन और स्नान करके शिव मन्दिर में

जाकर पूजन करे उसके बाद भोजन करना चाहिये । सायंकाल हाथ पैर धो कर तत्काल की विधि के अनुसार पूजन करे। दिशा मैदान के बाद ग्यारह बार मिट्टी और जल से हाथ धोवे फिर एक कलश जल से स्नान करे बस यही आचार है, अधिक तो अत्याचार है अतः निषिद्ध है क्योंकि गौण कार्य में व्यर्थ समय बिताने से मुख्य कार्य के लिये समय नहीं मिलेगा, और दुःख से जीवन बीतेगा। प्राणरक्षा के बिना मन स्थिर नहीं होता, और मन की स्थिरता के बिना मोक्ष कदापि नहीं हो सकता। इस लिये महासिद्ध लोग योग में ही डटे रहते हैं असत्य के भ्रमजाल में नहीं पड़ते।

मू०—यदा प्रारब्धं कर्म मन्यत एव तदा शङ्करस्य मण्डनमिश्रेणजाते विवादे शङ्करेण यत्नः किमर्थः कृतः । प्रारब्धकर्मणा किमपि भविष्यति तत्तुविनापि यत्नेन भविष्यतीति (पुन र्न भविष्यति तदापि किम् ? येतु प्रारब्धमोगोऽवश्य इति सिद्धान्तिनस्तेषां न भवनेनापि कियत्प्रारब्धं तत्तत्सिद्धान्तः श्रद्धेय निश्चिततयाग्रहणीयः । किमर्थंयने प्रयासः । परन्तुयत्रस्थले प्रारब्धस्याऽङ्गीकाराद्भृतएव परा-

जयो भवेत्तदा योगशक्तिमेवगृहीत्वा राज्ञःशरीरे जीवप्रवेश-करणादिकृतामित्यादि बहुधाप्रसिद्धमेव, यतो योगाश्रयेणैव विजयो जातः। पुनःन्यासिनांमतेशृङ्गारोवार्जितः, इयत्तत् सत्यंकथंजातं शरीरमन्यस्य परन्तु जीवस्तु स्वयमेव ततोपि योगिनां सिद्धान्तएव निश्चलो भवतीति।

भा०—यदि प्रारब्ध कर्म ही माना जाय तो शङ्कराचार्य को मण्डनमिश्र के साथ विवाद में उद्योग क्यों करना पड़ा! बिना उद्योग के प्रारब्ध कर्म से ही सब कुछ हो जाता! नहीं होता तब भी क्या? जो कोई प्रारब्ध का भोग आवश्यक है ऐसा सिद्धान्त मानते हैं उनके मत में होने से हो क्या, जो जो प्रारब्ध है वह वह होता है यह सिद्धान्त अवश्य श्रद्धापूर्वक ग्रहण करने लायक है। इसमें उद्योग की क्या आवश्यकता है परन्तु जहां पराजय भी होगा है वह भी प्रारब्ध वश से ही हुआ है। तब तो योग शक्ति का आश्रय लेकर राजा के शरीर में प्रवेश करना इत्यादि प्रसिद्ध कार्यों में योगबल से अर्थात् उद्योग से ही विजय हुई है यह कहना सार्थक नहीं होगा। अतः प्रारब्ध के चक्र में पड़कर योग साधन को न छोड़े।

संन्यासियों के मत में शृङ्गार वर्जित है यह ठीक है, तो शृङ्गार परिचय के लिये शङ्कर ने शरीरान्तरका ग्रहण क्यों किया। यदि कोई कहे कि शृङ्गार का परिचय तो दूसरे शरीर से किया था न कि संन्यासी शरीर से इसका उत्तर है—कि आत्मा तो दोनों शरीरों में एक ही है, इससे भी योगियों का ही सिद्धान्त स्पष्ट हो रहा है जो सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में वर्णित है।

मू०—क्वचिद्भोगी क्वचित्त्यागी इत्यादि।

श्रीनाथ सूत्रे—आचारे ब्रह्म विचारे योगीति।

ब्राह्मण आगत्याचारं प्रवर्तितवान्।

योगी चागत्य विचारं प्रवर्तितवान्। यावद् ब्राह्मण आचाराद् विचारे प्राप्तस्तावद् योगी ब्रह्म प्राप्त इति। अन्ये सांप्रदायिका आचार्या अधिकारिभेदेन सर्वस्यापि समाधानं कुर्वन्ति तत्तु महासिद्धानांमतेसर्वथाबाधकमेव कथंअधिकारिभेदेनसर्वस्यधर्म इति कथमन्त्यजानामपि तु तेषां धर्म एवेति। तथा चाऽनर्थ एव स्यात्, यतो धर्मस्तुमुमुक्षुपुरुषाणा मेव, अन्येषां तु सर्वेषामधर्म एव। मुमुक्षवश्चयोगाधिकारिण एव। योगभोगौ द्वौ पदार्थौ, तत्र मुक्तये योगाधिकारी

अन्येवर्णाश्रमिवैष्णवबौद्धा इत्यादयः सर्वे व्यवहारिण एवेति। कुत्रचित्स्थले केऽपिजनाः स्थितास्तेषु केनचित्पापस्य वार्ता उक्ता सा वार्ता द्वितीयेनाभिनन्दिता तदातत्पापमुक्तं कृतं तु प्रथमेनैव परन्त्वभिनन्दकत्वात् फलभागी तु द्वितीयो जात एव किंकिं वा नेति। तत्त्वितरशास्त्रेऽपि 'उपदेष्टानुमन्ता च साक्षात्कर्ताभिनन्दिता चत्वारः फलभागिन इति लिखितमेव। तथाचैक उपदेष्टाऽपरः कर्ता एवं रीत्याचाधिकारि भेदेन समाधानमसमीचीनमिति प्रतिभाति॥

भा०—श्रीनाथ सूत्र में भी कहा है—आचार और ब्रह्म विचार दोनों से योगी है। ब्राह्मण ने आकर आचार को योगी ने आकर विचार को प्रचलित किया ब्राह्मण ने जब नष्ट आचार से विचार को प्राप्त किया तब तक योगी ने ब्रह्म को प्राप्त कर लिया। अन्य मन्त्र देने वाले आचार्य अधिकारी भेद से सबका समाधान करते हैं यह महासिद्धों के मत सर्वथा बाधक है, कैसे? यदि अधिकारी भेद से कहो ? सबका धर्म है यह कैसे होगा क्योंकि अन्त्यज के लिए नहीं माना जाता है। यदि उसका भी यह धर्म है ऐसा कहो ? अनर्थ ही हो जायगा, अतः मुमुक्षु का ही धर्म है औ के लिए अधर्म है मुमुक्षु तो योग के अधिका

होते हैं। योग और भोग दो पदार्थ हैं, उनमें मुक्ति के चाहने वाले योगाधिकारी हैं और सब व्यवहारी हैं। किसी जगह दो आदमी बैठे थे उनमें किसी ने पाप की बात कही दूसरे ने उसका अनुमोदन किया, यद्यपि वह पाप पहले ने किया है किन्तु अनुमोदन करने से दूसरा भी उसका फलभागी हो ही जाता है। शास्त्र में भी ऐसा ही कहा है—उपदेश देनेवाला, अनुमोदन करने वाला, खुद करने वाला, और प्रशंसा करने वाला ये चारों ही शुभाशुभ फल के भागी होते हैं, यह लिखा ही है। तब एक तो उपदेश देने वाला और दूसरा करनेवाला है इस रीति से अधिकारी भेद करके समाधान करना ठीक नहीं मालूम पड़ता।

मू०—कृतयुगे केवलं प्रणवगायत्रीयोगानुसारिसाधनेन जीवो मुक्तिप्राप्तः, पश्चादन्य युगे सर्वेऽपि यद्येतद्धर्मं धृत्वा तदामुक्ता एवस्युस्तर्हि कथंसंसार प्रवृत्तिर्भवेदिति नाथेच्छया ब्रह्मणावेदादिशास्त्राणि प्रकटितानि। तेन स्वस्वरूपात्पराङ्वृत्तिः कृतायेनच प्रणवयोगेन स्वरूपानुभवः प्रकटितः सोऽप्रकटः कृतः। अध्यारोपापवादादिप्रकारेण यद्मायिकवस्तु तत्रमिथ्याकल्पना बहुविधानेनकृता मिथ्यैवास्त्री मिथ्यैवाधनारी

मतात्पर्यमिदं कर्म ईदृशंवर्तते यत्तद्वज्र मिति। तदातत्करणं विना किंमत्रेन्। केवलज्ञानेनकथं सिद्धिः। ज्ञानमपिकर्मं वयर्तते। अन्तः करणस्यधर्मत्वात् तत्रापिकरणं वर्ततएवेति

भा० टी०—नाथ सूत्र में लिखा है—ब्राह्मण में वेद प्रवृत्त हुए और सन्यासी तीर्थों, में निर्गोण पद को कोई नहीं प्राप्त कर सका। कैसे ? सूक्ष्म ब्रह्म की प्राप्ति के लिये एकाक्षर ओंकार सूक्ष्म वेद ही प्रकट किया, सूक्ष्म ही अक्षर त्रयरूप गायत्री की गई। साकार होता हुआ भी आकार का अभिमान न होने से निराकार के तुल्य नाथ रूप प्रकट हुआ। उस नाथ के द्वारा सूक्ष्म योगाभ्यास रूप योग का उपदेश हुआ उसका धारण करने वाला सूक्ष्म अवधूत ही माना गया, उसके बाद माया सहित स्थूल ब्रह्म की प्राप्ति के लिये एकाक्षर ओंकार रूप सूक्ष्म वेद से अनेकाक्षर स्थूल वेद प्रकट किया। अक्षर त्रय गायत्री से चौबीस अक्षरों की स्थूल गायत्री की योग से स्मृति पुराण आदि अनेक शास्त्र रचे गये, इन सबका धारण करने वाले ब्राह्मण परम हंस और अन्य लोगों की रचना हुई।

नाथ सूत्र में कहा है कि गुरु के वचन का एक बार उल्लंघन

होने से उसका युग युग में उल्लंघन होता जाता है इस कारण गुरु के वचन को किसी काल में नहीं भूलना चाहिये। स्वयं अनुष्ठान न करने वाला पुरुष सभा में आकर किसी देव अथवा किसी धर्म का पक्ष लेता है और स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर छोड देता है वह किस तरह मोक्षका भागी बन सकता है कदापि नहीं ऐसे शिष्य को सद्गुरु भी किस प्रकार अङ्गीकार कर सकता है यदि करे भी तो उसका इष्ट देव भी अप्रसन्न हो जाता है। कोई कहता है मैं स्मार्त हूँ, वैष्णव हूँ जो कुछ भी हूँ, जब जब मैं कहता हूँ स्मार्त्त कि तुम हो तब उसका यह तात्पर्य हुआ कि स्मृ- तियों में कहा हुआ सारा आचार तुम में है। तब वह उत्तर देता है कि सब आच र तो मुझ में नहीं है इस पर मेरा कहना है कि मैं स्मार्त्त हूँ यह तेरा कथन मात्र रहा न कि आचरण, केवल कथन से पाप नहीं हट सकता इसी लिये उस धर्माचरण से पाप नहीं होता है यह कहा है न कि कथन से और मिथ्या दोष भी लगेगा। तब वह हार कर कहता है कि मैं स्मार्त्त नहीं उस पर मैं कहता हूं कि स्मार्त्त कुल में उत्पन्न होकर स्मार्त्त धर्मी न हो तो धर्म में विरोध आजायेगा, इस पर यह उत्तर है। कि जैसा प्रारब्ध है वैसा ही मैं हूँ। यदि मैं कहूँ कि प्रारब्ध में ही श्रद्धा को स्थिर करे कैसे-जैसा प्राणियों का प्रारब्ध ह वैसा

होता ही है किन्तु कहने से धर्म नहीं होता किसी का प्रारब्ध है कि यह कूपमें गिरेगा यह अनजान में चाहे कूप में गिर पड़े किन्तु जब जान लेता है तो अवश्य उसके रोकने का उपाय करेगा। आखिर होता है वही जैसा कहा है कि जैसा प्रारब्ध है वैसा हूं। फिर वह कहता है कि जो कुछ गुरु की आज्ञा होती है वही मैं करता हूं। फिर मैं कहता हूं कि गुरु जो तो उत्तमाधिकारी हैं तुम तो मन्दाधिकारी हो। तुम को गुरु वाक्य में विश्वास रखना चाहिये, इस पर उसने कुछ नहीं कहा इत्यादि नाना प्रकार से बहुत बात चीत करने पर भी वर्ण आश्रम–स्त्री और पुरुष का कोई भी चिन्ह स्थिर नहीं होता है अतः अव्यक्त लिङ्ग होने से अत्याश्रमी ही कहलाता है इस लिये असत्य वस्तु की कल्पना क्यों की जाय, महा सत्य स्वरूप अवधूत पने का ही ग्रहण करना चाहिये। जब सब वर्ण नहीं हैं तो स्मार्त्तहोकर भी क्यों कहा जाय तब वह कहता है कि कोई एक आध स्मार्त धर्मतो मुझ में है ही उस पर मेरा कथन है कि एक स्मार्त्त धर्म है तो दूसरा किस का धर्म है। उस पर उत्तर देता है कि जो मेरे मन के अनुकूल है, इस पर मैं कहता हूँ कि जो तेरे मन के अनुकूल है वह अधर्म नहीं किन्तु वह भी किसी का धर्म ही होगा, तब तो तुम में धर्म की खिचड़ी हुई। तब लाचार होकर कहना पड़ता है कि मैं स्मार्त नहीं हूं फिरमैं कहता हूँ कि यदि स्मार्त कुल में उत्पन्न होने पर

भी स्मार्त धर्म ॥ रहा तो धर्म से भ्रष्ट हो गया। उस के कहने का तात्पर्य यह है कि कर्म वज्र के समान अभेद्य है, वह बिना भोग के नष्ट नहीं होता योगादि के उद्योग बिना नहीं हट सकता, केवल ज्ञान से भी सिद्धि कैसे मिल सकती है। वह भी तो अन्तकरण का धर्म होने से कर्म रूप ही है, अतः कर्मानुष्ठान से हीं सिद्धियां होती हैं।

मू०—द्वैतवादिनः कथयन्ति–अस्माभिः किं प्रेरकंप्रतिकथ्यते द्वैतमिति नास्तीति। सत्यद्वैतएव परन्तुद्वैतं शरीरंयतः शरीर शरीरी भावेन सोपि द्वैतएवास्तीति कथ्यते। अद्वैत वादिनश्चकिंकथयन्ति ? अद्वैतमेवास्ति, यच्छरीरंद्वैतंदृश्यते तत्तुमिथ्यैवेति। महासिद्धाः कथयन्ति–चैतन्यंजडंच

शरीरादि उभयमपि मिलित्वाएकमेवपूर्णंवस्तु यतःपरमाद्वैतं यत्तु किमपिनाथतेजस्तचक्रवर्ति सर्वोपरिवर्तते। केचित्कथयन्ति ज्ञानिनोज्ञानं निरपेक्षमेव कर्मणोऽपेक्षां पूर्वकालेपि न करोतितत्तुनास्त्येव। भवदीयमतानि सर्वाण्यपि शास्त्राण्यर्ध्वबाहुतयैवंवदन्ति कर्मणाचित्तशुद्धिः स्यादनन्तरं तत्त्यागस्त्यागाच्चज्ञानप्राप्तिर्ज्ञानान्मुक्तिरियं वार्ताघण्टाघोषवद्घियते इति।

चकार। सर्वेब्रह्माविष्णुरुद्रादयोदेवाः शेषादयोनागामन्वादयोनरा अन्येचपशुपक्षिणोयावज्जीवं सर्वेस्त्रीजिता, एकोनाथ एवमायाजेता। तदुक्तं महासिद्ध श्रीविचारनाथेनभर्तृहरिणा

शम्भु स्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां,
येनाऽक्रियन्तसततंगृहकर्मदासाः।
वाचामगोचर चरित्रविचित्रिताय
तस्मैनमो भगवते मकरध्वजाय ॥

अतः कारणाद् यदागार्हस्थ्यं कृतं तदास्त्रीपोषणमवश्यमेवकर्तव्यं यदाचविरागेच्छातदा स्थवधूर्तेनश भाव्यमिति।

भा०—वेदगृहस्थ धर्मका वर्णन करते हैं, उनकी रीति में कहता हूं—स्त्री के बिना गृहस्थ धर्म चल ही नहीं सकता क्योंकि गार्हस्थ्य का मूल ही स्त्री है। और भी कहते हैं। हर महीने तीन रात ऋतु धर्म होता है, फिर शुद्ध दिनों में सन्तान के लिये ऋतुदान किया जाता है सुख के लिये कदापि विषय भोग नहीं करना चाहिये यह भी वेदों का उपदेश है, यदि ऐसा है तो पहले घर में निवास करना फिर उसमें भोजनादि करना, उसमें शरीर का पुष्ट होना, उसमें

बाद अवश्य कामोद्दीपन होता है तब यह शरीर कैसे अपने वश में रह सकता है। उसमें भी स्त्रियों का चित्त तो काम के भोगे बिना क्षणभर भी शान्त नहीं हो सकता। सो कैसे? स्त्रियों को तो काम ही इष्ट होता है उसकी पूर्ति न होने पर उनका चित्त व्यभिचार की तरफ दौड़ता है उस पाप से सारा कुल नष्ट होजाता है और लोक में हँसी होती है। इसलिये महासिद्ध लोग गार्हस्थ्य नहीं करते। सिद्धों का इष्ट देव नाथ है उन्होंने भी स्त्री का ग्रहण नहीं किया है। ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदि समस्त देवता शेष आदि नाग मनु आदि मनुष्य और पशु पक्षी इत्यादि समस्त प्राणी अपने जीवनकाल में स्त्री के वश में रहे हैं, सिर्फ एक नाथ जी ने ही माया को जीता है। इसी पर महासिद्ध श्रीविचारनाथ भर्तृहरि ने भी कहा है— जिसने शिव ब्रह्मा और विष्णु सरीखे देवों को भी स्त्रियों का दास बनादिया अकथनीय अद्भुत चरित्रवाले उस काम देव को नमस्कार है इसलिये जब गृहस्थ को धारण किया है तो स्त्री का पालन पोषण अवश्य करना चाहिये, यदि वैराग्य की इच्छा है तो अवधूत होजाना चाहिये।

मू०— परमहंसास्तु कामंनिषेधयन्ति स निषेधो न भवत्येवम्। कथम्? तदुक्तं श्रीमीननाथेन—

चकार । सर्वेब्रह्मविष्णुरुद्रादयोदेवाः शेषादयोनागामन्वादि-योनरा अन्येचपशुपक्षिणोप्यवर्जितं सर्वेस्त्रीजिता, एकोनाथ एवमायाजिता । तदुक्तं महासिद्ध श्रीविचारनाथेनभर्तृहरिणा

शम्भु स्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां,
येनाऽक्रियन्तसततंगृहकर्मदासाः ।
वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय
तस्मैनमो भगवते मकरध्वजाय ॥

अतः कारणाद् यदागार्हस्थ्यं कृतं तदाग्नीषोमगमव-श्यमेवकर्तव्यं यदाचविरागेच्छातदा स्वयंधृतेनैव भाव्यमिति।

भा०—ऐसे गृहस्थ धर्मका वर्णन करते हैं, उसकी रीति मैं कहता हूँ—स्त्री के बिना गृहस्थ धर्म चल ही नहीं सकता क्यों कि गार्हस्थ्य का मूल ही स्त्री है । और भी कहते हैं । हर महीने तीन रात ऋतु धर्म होता है, फिर शुद्ध दिनों में सन्तान के लिये अनुष्ठान किया जाता है सुख के लिये कदापि विषय भोग नहीं करना चाहिये यह भी वेदों का उपदेश है, यदि ऐसा हो तो पहले घर में निवास करना फिर उसमें भोजनादि करना, उसमें शरीर का पुष्ट होना, उसके

बाद अवश्य कामोद्दीपन होता है तब यह शरीर कैसे अपने वश में रह सकता है। उसमें भी स्त्रियों का चित्त तो काम के भोगे बिना क्षणभर भी शान्त नहीं हो सकता। सो कैसे? स्त्रियों को तो काम ही इष्ट होता है उसकी पूर्ति न होने पर उनका चित्त व्यभिचार की तरफ दौडता है उस पाप से सारा कुल नष्ट होजाता है और लोक में हंसी होती है। इसलिये महासिद्ध लोग गार्हस्थ्य नही करते। सिद्धों का इष्ट देव नाथ है उन्होंने भी स्त्री का ग्रहण नहीं किया है। ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदि समस्त देवता शेष आदि नाग मनु आदि मनुष्य और पशु पक्षी इत्यादि समस्त प्राणी अपने जीवनकाल में स्त्री के वश में रहे हैं, सिर्फ एक नाथ जी ने ही माया को जीता है। इसी पर महासिद्ध श्रीविचारनाथ भर्तृहरि ने भी कहा है— जिसने शिव ब्रह्मा और विष्णु सरीखे देवों को भी स्त्रियों का दास बनादिया अकथनीय अद्भुत चरित्रवाले उस काम देव को नमस्कार है इसलिये जब गृहस्थ को धारण किया है तो स्त्री का पालन पोषण अवश्य करना चाहिये, यदि वैराग्य की इच्छा है तो अवधूत होजाना चाहिये।

मू० — परमहंसास्तु कामंनिषेधयन्ति न निषेधो न भवत्येवम्। कथम्? तदुक्तं श्रीमीननाथेन —

हरकोपानलेनैव भस्मीभूतः कृतः स्मरः ।
अर्धगौरी शरीरोहि तेन तस्मैनमोस्तुते ॥

अतोमहासिद्धा विपयरीत्या तु त्यागमेव कुर्वन्ति । पुनः प्रकृतिरपि मलैवर्तते' शिवशक्त्योरस्माकंमतेऐक्यमेववर्तते तदुक्तं—

शिवस्याभ्यन्तरेशक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः ।
अन्तरंनैवजानीयाच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥
प्रसरंभासयेच्छक्तिः संकोचंमासयेच्छिवः ।
तयोर्योगस्यकर्तायःसभवेत्सिद्धयोगिराट् ॥

एवंत ऐवंयंज्ञात्वा काममपि भजन्त्येव। अतएवोक्तं—

क्वचिद् भोगी क्वचित्त्यागीत्यादि ।
त्यागिनामपेक्षया त्यागएवएतादृशः ॥

एतैःक्रियतेयादृशस्त्यागिनामपिन भवेत् । कथम् ? कर्मराहित्योपरितुत्यागोनास्तितदैवं प्रारब्धमपित्यज्यते । शून्ये लग्नैः प्रारब्धमपित्यज्यते । यदापभोगंशृन्वन्ति—

तदा संसारिणोऽपि यादृशंनकुर्वन्ति तादृशमेतेकुर्वन्ति कथम् ? संसारिणः प्रकृतिलग्नाएवयोगिनस्तुप्रकृतिब्रह्मो-भये पूर्णलग्ना अतस्तेषांरीतिर्विलक्षणैव । भोगिभिः सुभोग-एवैकःक्रियतेतेषां त्यागो न भवति । भोगिनान्त्वेको भोग एव भवति नतुते त्यागे समर्थाः । पुनस्त्यागिनोयेभवन्ति तैःप्रथममेव त्याग कृतः। त्यागिनइति एषांनामतः पुनर्भोगः कथंक्रियतेकरणेचसर्वमेवनष्टंस्यादिति। अथचाऽवधूतास्त्या-गिनामपिलोके त्यागस्याधिक्यं दृष्टिगोचरं कृत्वापुनः स्वे-च्छया भोगमपिकदाचित्कुर्वन्ति तथापि तेषांभोगोबाधको नभवेत् । भोगिनोभोगमेवकुर्वन्त्येवं त्यागिनस्त्यागमेवेत्यव-धूतानान्तुत्यागभोगयोर्द्वयोरपिपदार्थयो सामर्थ्यम् । त्यागं कयारीत्या कुर्वन्ति ? युगपर्यन्तमप्याहारादिकंनगृह्णन्त्येवं त्यागिनां नभवति । कथम् ? ते देहेनविजिताएतेतुदेहा-धीनाः सन्तियत इतिदिक् ।

भा०—परमहंस लोग तो काम का निषेध करते हैं परन्तु इस तरह केवल कथन से निषेध नहीं होता। कैसे ? इस पर श्रीमीननाथ जी ने कहा है—कि शिव जी की क्रोधाग्नि से

कामदेव भस्म हो गया, तथापि स्वयं अर्धगौरी शरीर हैं अर्थात् पार्वती हर समय उनके वाम भाग में विराजमान हैं। ऐसे शिव जी को नमस्कार है। इस लिए महासिद्ध विषय के वर्णन द्वारा भी त्याग हो कहते हैं। फिर प्रकृति भी तो ब्रह्म ही है क्योंकि मेरे मत में शिव और शक्ति का अभेद ही है। इसी विषय में कहा है कि शिव के भीतर शक्ति और शक्ति के भीतर शिव है अर्थात् दोनों आपस में मिले हुए हैं एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता। चांद और चांदनी की तरह उनका भेद नहीं जाना जा सकता इन श्लोकों की हिन्दी पहले ही हो चुकी है। इस प्रकार अभेद जान कर महासिद्ध काम का उपभोग भी कर सकते हैं इसी लिये कहा है—कहीं भोगी और कहीं त्यागी इत्यादि। त्याग भी जैसा महासिद्ध करते हैं वैसा त्यागी कहलाने वाले अन्य लोग नहीं कर सकते। कैसे, अन्य लोग संचित और—क्रियमाण कर्मों के त्याग से अधिक नहीं कर सकते, महासिद्ध तो प्रारब्ध का भी परित्याग कर देते हैं। शून्य में लीन होने से प्रारब्ध भी छूट जाता है। जब भोग करते हैं तो ऐसा करते हैं जिसको संसारी लोग कर ही नहीं सकते। कैसे अन्य लोग तो प्रकृति में फंसे रहते हैं, और ये तो दोनों को मिलाकर पूर्ण में ही लीन रहते

हैं, इसलिये इनकी रीति निराली है। भोगी लोग सुन्दर २ भोग ही भोगते हैं उनका त्याग नहीं कर सकते। भोगियों को तो भोग ही मुख्य है वे उसके त्याग में समर्थ नहीं हैं, जो त्यागी होते हैं वे तो पहले ही त्याग कर देते हैं। जिनका नाम त्यागी है वे भोग कैसे कर सकते हैं यदि वे भोगी हो जायें तो अपने स्वरूप से भ्रष्ट हो जायेंगे। अवधूत लोक में त्यागियों के त्याग की अधिकता को देखकर कभी अपनी इच्छा से भोग भी कर लेते हैं, तो भी उनका भोग उनके स्वरूप का बाधक नहीं होता है। भोगी भोग ही करते हैं और त्यागी त्याग ही। अवधूत को सामर्थ्य तो त्याग और भोग दोनों में ही है। त्याग किस रीति से करते हैं? देखो युग पर्यन्त भी भोजनादि कुछ नहीं करते हैं, त्यागी लोग ऐसा नहीं करते कैसे अन्य लोग तो देह से जिते हुए हैं और इन्होंने तो देह को अपने अधीन कर रक्खा है।

मू०—अनयारीत्यापरमार्थस्तु प्रथममेवनष्टः। कथम्? यदा स्त्रीगृहीता। पश्चादयंलोकोनष्टः। कदा? यदास्त्रीग्रहणेनगार्हस्थ्यं-जातंतत्र च गृहस्थरीत्या प्रवृत्तोन। एवं च द्वावपिलोकौनष्टौ भोगो-पिनास्ति मुक्तिरपिनास्ति चंचलेन मनसा सर्वमपिनष्टीकृतम्। कथम्? गार्हस्थ्यंत्यक्त्वा आश्रमान्तरंगृहीतंतत्रापि पुनः श्रमेण-

कातरोभूत्वादुःखेनसीदन् प्रारब्धस्याङ्गीकाराद् यद् यद्यथा प्रारब्धं-तत्तन् सर्वमपिकर्म करोति। तदाकर्मणःसाङ्कुरत्वादेवकदापि-काले मुक्तिभाग्नभवत्येव, यथा ग्रामेगर्दभा वनेवाशूकरास्तथाविष-यवशा वारंवारंजन्मादिगृह्णन्ति। पुनश्चंचलेनमनसामुक्तोहस्तीग्रामा-द्वनंगच्छति किंचित्सुखमेव भविष्यतीति वनाच्छृगालो ग्राम मागच्छतिमृतकाऽस्थ्यादि भक्षणार्थमितिनिर्देश इति। यथाराजा, राजस्त्रीगणाश्चनेके भवन्ति, स्वयंतु एकएवसतेषांसमस्तानांकाम पूर्तिपूर्णांकथंकुर्यात् ? क्वचित्त प्रसादेनैवयथेच्छं क्रीडतिनाम। यतस्तेषां तु महत्तरंदुःखमेवस्यात्। तेनदुःखजनिताऽपध्यानेनरा-ज्ञोऽकल्याणमेवभवेत्। अतएवोक्तं राज्यान्तेनरकइति। तथैवै-तादृशएवाचार्यएकएव, शिष्यास्तुबहवःकृताः, तेषुकस्यकस्यपापं हरेत्। पापहरणाऽसमर्थोबहूनां शिष्याणां पापेनाचार्योऽपिदुर्गति मेव प्राप्नुयात्। तदुक्तं सिद्धसिद्धान्तपद्धतौ श्रीगोरक्षनाथेनयाचार्या यदुद्दीरिता इत्यादि।

तेतस्यतोधंचिता इत्यन्तम्।

यदाचस्यतो वंचितास्तदा मुख्यनरकभाजएवेत्यर्थादागतम्।
यतोहेतोर्बहुशिष्यकरणंसिद्धानांमतेवर्जितम् ॥

भा०—इस रीति से परमार्थ तो पहले ही नष्ट हो चुका, कैसे? जब स्त्री का ग्रहण कर लिया जाता है तो यह लोक बिगड़ जाता है। जब स्त्री का ग्रहण करके गृहस्थी बना, और उस में गृहस्थ रीति से नहीं चलेगा तो दोनों ही लोक नष्ट होजाते हैं, भोग भी नहीं हुआ, और मुक्ति भी नहीं हुई मन चचल होने से सब भ्रष्ट होजाता है। कैसे गार्हस्थ्य छोड़ कर दूसरे आश्रम का ग्रहण किया, वहां भी श्रम से थक कर दुःखी होते हुए प्रारब्ध को स्वीकार किया, फिर जैसा प्रारब्ध होता वह वैसा काम करता है। जब कर्म के चक्र में पडने से कदापि मुक्ति नहीं होती। जैसे गांव में गधे वन में सूअर विषयासक्त रहते हैं वैसे ही विषयासक्त होकर बार बार जन्म और मरण के चक्र में घूमते रहते हैं। मन की चंचलता से ही बंधन से छूटा हुआ हाथी मुझे सुख होगा इस लिये ग्राम से वन को जाता है, और गीदड़ मुर्दे की हड्डी खाने के लिये वन से गाव को आता है। जैसे राजा एक है और उसकी स्त्रियां अनेक हैं, अकेला वह राजा उन अनेक स्त्रियों की कामचेष्टा को कैसे पूर्ण कर सकता है, हां अपना चित्त खुश करने के लिये यथेच्छ क्रीडा करता है। किन्तु उन स्त्रियों को तो महा कष्ट होता है। उस दुःखजनित अपराध से राजा का अमंगल ही होगा। इस

कातरोभूत्वादुःखेनसीदन् प्रारब्धस्याङ्गीकाराद् यद् यद्यथा प्रारब्धं-तत्तत् सर्वमपिकर्म करोति। तदाकर्मणःसाङ्कुरत्वादेवकदापि-काले मुक्तिभागूनभवत्येव, यथा ग्रामेगर्दभा वनेवाशूकरास्तथाविषयवशा वारंवारंजन्मादिगृह्णन्ति। पुनश्चचलेनमनसामुक्तोहस्तीग्रामा-द्वनंगच्छति किंचित्सुखमेव भविष्यतीति वनाच्छृगालो ग्राम-मागच्छतिमृतकाऽस्थ्यादि भक्षणार्थमितिनिर्देश इति। यथाराजा-राजस्त्रीगणाश्चनेके भवन्ति, स्वयंतु एकएवसतेषांसमस्तानांकाम-वृत्तिपूर्णांकथंकुर्यात्? स्वचित्त प्रसादेनैवयथेच्छं क्रीडतिनाम। यतस्तेषां तु महत्तरंदुःखमेवस्यात्। तेनदुःखजनिताऽपथ्यानेनरा-ज्ञोऽकल्याणमेवभवेत्। अतएवोक्तं यान्त्येनरकइति। तथैवै-तादृशएवाचार्यएकएव, शिष्यास्तुबहवःकृताः, तेषुकस्यकस्यपा-हरेत्। पापहरणाऽसमर्थोबहूनां शिष्याणां पापेनाचार्योऽपिदुर्गति-मेव प्राप्नुयात्। तदुक्तं सिद्धसिद्धान्तपद्धतौ श्रीगोरक्षनाथेनआचा-यहुदीक्षिता इत्यादि।

तेतस्यतोवंचिता इत्यन्तम्।

यदातस्यतो वंचितास्तदा मुख्यनरकभाजएवेत्यर्थादागतः यतोहेतोर्बहुशिष्यकरणंसिद्धानांमतेवर्जितम्॥

भा०—इस रीति से परमार्थ तो पहले ही नष्ट हो चुका, कैसे? जब स्त्री का ग्रहण कर लिया जाता है तो यह लोक बिगड़ जाता है। जब स्त्री का ग्रहण करके गृहस्थी बना, और उस में गृहस्थ रीति से नहीं चलेगा तो दोनों ही लोक नष्ट होजाते हैं, भोग भी नही हुआ, और मुक्ति भी नहीं हुई मन चचल होने से सब भ्रष्ट होजाता है। कैसे गार्हस्थ्य छोड़ कर दूसरे आश्रम का ग्रहण किया, वहां भी श्रम से थक कर दुःखी होते हुए प्रारब्ध को स्वीकार किया, फिर जैसा प्रारब्ध होता वह वैसा काम करता है। जब कर्म के चक्र में पडने से कदापि मुक्ति नही होती। जैसे गांव मे गधे वन में सूअर विषयासक्त रहते हैं वैसे ही विषयासक्त होकर बार बार जन्म और मरण के चक्र में घूमते रहते हैं। मन की चंचलता से ही बंधन से छूटा हुआ हाथी मुझे सुख होगा इस लिये ग्राम से वन को जाता है, और गीदड़ मुर्दे की हड्डी खाने के लिये वन से गाव को आता है। जैसे राजा एक है और उसकी स्त्रियां अनेक हैं, अकेला वह राजा उन अनेक स्त्रियों की कामचेष्टा को कैसे पूर्ण कर सकता है, हां अपना चित्त खुश करने के लिये यथेच्छ क्रीडा करता है। किन्तु उन स्त्रियों को तो महा कष्ट होता है। उस दुःखजनित अपराध से राजा का अमंगल ही होगा। इस

लिए ठीक कहा है कि राज्य के अन्त में नरक में वास होता है। वैसे ही आचार्य भी अकेला ही है और शिष्य बहुत कर लिए हैं उन में किस किस के पाप को हटायेगा। उन शिष्यों के पाप न हटाने पर उसी पाप से गुरु भी दुर्गति को प्राप्त होता है। सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में कहा भी है नाथ जी ने जो आचार्य बहुत से चेले बनाते हैं यह ठीक नहीं, और वे तत्त्व से वंचित रहते हैं इत्यादि। जब तत्त्व से वंचित रहते हैं तो अवश्य घोर नरक के भागी बनते हैं यह अर्थात् से सिद्ध होता है।

इसलिए बहुत शिष्य बनाना सिद्धों के मत में वर्जित है।

मू०— षट्पदार्थायत्रभवन्ति स भगवान् । के ते षट् पदार्थाश्चमी— समग्रैश्वर्यम् १ धर्मः २ यशः ३ श्रीः ४ ज्ञानम् ५ वैराग्यम् ६ इत्येषांमध्ये एकोऽपिरुद्रविष्णवादिना भगवत्पदवाच्येषुन । प्रथममंतु समग्रैश्वर्ये योगरूपं तदेवनास्ति कथम् ? सर्वेकामवशाः स्त्रीसङ्गिनो यान् योगिनोलोकाः कथयन्ति तेषांस्त्री संगः, एतत्सुहास्यमेव। पुनर्धर्मः—यत्र यत्र स्थले छलः क्रियतेतदाधर्मभावः कथम् ? छलस्तुनारदस्य वानरमुखकरणादिनाविष्णोः प्रसिद्ध

एवेति। पुनर्यशः—तदपिकथम्? रावणवधे लोककल्याणे यशोजातं तथैवस्त्रीहरणेऽप यशोपिजातं कथं रावणस्य पामरस्यवधेनकिं, तस्यवालिवानरेण बन्धनं कृतं सहस्र बाहुनार्जुनेन च बन्धनं कृतं पुनारामस्तु भगवानिति कथ्यते। जगत्कर्ताचकथ्यते। तस्यस्त्रीहरणमेतत्तुमहदपयशः। पुनः श्रीः—यस्यपरमार्थे मुक्तिर्नास्ति ऐहिके च यशोनास्ति तस्य श्रीः कथम्। पुनर्ज्ञानम्—यदाज्ञानस्वरूपास्ते तदाऽज्ञानकार्ये संसारकार्ये किमर्थं प्रवृत्तास्ततो ज्ञानं कथम्। पुनर्वैराग्यम्—तत्तु सर्वथैवैतत्काम्पितेप्वीश्वरेपुनैवनैवेति। कथं पुराणेएतेषां लौकिकया त्वेवमायास्यति तत्तुवक्तुमशक्यम्। दास्यां वेश्या यामासक्ता इत्यादि किंकिंलिख्यते। तदावैराग्यंकुत्र? अतः कारणात् षडेवपदार्थानाथे तत एव तिष्ठन्ति। समग्रैश्वर्यन्तु योगः, सतुसहजसिद्धएवपुनः। धर्मोऽपि स एव योमुक्ति रूपः, एतद्व्यतिरिक्तः स्मृत्यादि शास्त्राणि धर्मं वर्णयन्ति सत्वधर्मएव, पुनर्यशोऽपि यस्यैव योमुक्तरूपस्तस्यैव बन्धरूपस्य कथमयशः पुनः श्रीः शोभापि यस्यैव स मुक्तो बंध

लिए ठीक कहा है कि राज्य के अन्त में नरक में वास होता है। वैसे ही आचार्य भी अकेला ही है और शिष्य बहुत कर लिए हैं उन में किस किस के पाप को हटायेगा। उन शिष्यों के पाप न हटाने पर उसी पाप से गुरु भी दुर्गति को प्राप्त होता है। सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में कहा भी है नाथ जो ने जो आचार्य बहुत से चेले बनाते हैं यह ठीक नहीं, और वे तत्त्व से वंचित रहते हैं इत्यादि। जब तत्त्व से वंचित रहते हैं तो अवश्य घोर नरक के भागी बनते हैं यह अर्थात् से सिद्ध होता है।

इसलिए बहुत शिष्य बनाना सिद्धों के मत में वर्जित है।

मू०— षट्पदार्थायत्रभवन्ति स भगवान्। के ते षट् पदार्थाअमी— समग्रैश्वर्यम् १ धर्मः २ यशः ३ श्रीः ४ ज्ञानम् ५ वैराग्यम् ६ इत्येषांमध्ये एकोऽपिरुद्रविष्णवादिना भगवत्पदवाच्येषुन। प्रथमंतु समग्रैश्वर्य योगरूपं वदेयनास्ति कथम्? सर्वेकामवशाः स्त्रीसङ्गिनो यान् योगिनोलोकाः कथयन्ति तेषांस्त्री संगः, एतत्तुहास्यमेव। पुनर्धर्मः—यत्र यत्र स्थले छलः क्रियतेतत्राधर्मभावः कथम्? छलस्तुनारदस्य वानरमुखकरणादिनाविष्णोः प्रसिद्ध

एवेति। पुनर्यशः — तदपिकथम्? रावणवधे लोककल्याणे यशोजातं तथैवस्त्रीहरणेऽप यशोपिजातं कथं रावणस्य पामरस्यवधेनकिं, तस्यवालिवानरेण बन्धनं कृतं सहस्र बाहुनार्जुनेन च बन्धनं कृतं पुनारामस्तु भगवानिति कथ्यते। जगत्कर्ताचकथ्यते। तस्यस्त्रीहरणमेतत्तुमहदपयशः। पुनः श्रीः—यस्यपरमार्थे मुक्तिर्नास्ति ऐहिके च यशोनास्ति तस्य श्रीः कथम्। पुनर्ज्ञानम् — यदाज्ञानस्वरूपास्ते तदाऽज्ञानकार्ये संसारकार्ये किमर्थं प्रवृत्तास्ततो ज्ञानं कथम्। पुनर्वैराग्यम्— तत्तु सर्वथैवैतत्काल्पितेष्वीश्वरेपुनैवनैवेति। कथं पुराणेएतेषां लौकिकया त्वेवमायास्यति तत्तुवक्तुमशक्यम्। दास्यां वेश्या यांमासक्ता इत्यादि किंकिंलिख्यते। तदावैराग्यंकुत्र? अतः कारणात् षडेवपदार्थानाथे तत एव तिष्ठन्ति। समग्रैश्वर्यन्तु योगः, सतुसहजसिद्धएवपुनः। धर्मोऽपि स एव योमुक्ति रूपः, एतद्व्यतिरिक्तः स्मृत्यादि शास्त्राणि धर्मं वर्णयन्ति सत्यधर्मएव, पुनर्यशोऽपि यस्यैव योमुक्तरूपस्तस्यैव बन्धरूपस्य कथमयशः पुनः श्रीः शोभापि यस्यैव स मुक्तो बंध

रूपस्यछविः कथं भवेत् ? यो लौकिकसुखदुःखेमग्नइति ज्ञानं. तस्यैवज्ञानं पुनर्वैराग्यं तस्यैववैराग्यमेवच सर्वेषामाधारोनाथ एव, अतः कारणात्महासिद्धानां तात्पर्यंनाथपरमेवेति । कोपिकथयति-किंनाथ एवमुक्तिरूपएते ईश्वरामुक्तानभवन्ति तत्तु प्रथममेवोक्तं येस्त्रीसंयुक्ताः संसारकार्येचासक्तास्ते कथंमुक्तिरूपाइत्यत एवाग्रेएतेषां मुक्तिबंधरूपत्वं कथयिष्यते भगवच्छब्दनिर्णयोऽपिकरिष्यते । अस्माकं मतेशक्तिः सृष्टिंकरोति शिव• पालनंकरोति कालः संहरतिनाथोमुक्तिंददाति । ब्रह्माविष्णुस्तुशिवशक्तिकालानामवान्तरभेदेन कर्तृत्वादिशक्तिवत्तुस्त्वमचया यदा शिवादयः संसारप्रवर्तका जातास्तदा बन्धरूपाएवभूताः । कथम् ? जीवरूपेणबन्धनम्, ईश्वररूपेणापि बन्धनं दत्तमिति भेदोऽतएवजीवात्मापरमात्मेति। परन्तुशुद्धात्मानास्ति। सतुशुद्धात्मा नाथ एव एतंसंसारमज्ञानं प्रवर्तयन्ति । नाथस्त्वज्ञानं निवर्तयति । नाथरूपेणसृष्टिकरण उपेक्षा । आचार्याणान्तुखण्डखण्डेषुपाण्डित्यं वर्तते पूर्णो धर्मोनास्ति संसार प्रवृत्तिकरण

रूपंवस्तुचैकं पूर्णोधर्मो नतुमोचधर्मो यथाराज्ञामेकं स्वार्थं सम्पादकृत्यमेवपूर्णं नत्वन्येधर्माः । धर्माश्चैतेक इति यशो वैराग्यं तपस्तीर्थं व्रतंत्यागोज्ञानं योगइत्यादयः । शौर्यमौदार्यं पुण्यंयशोऽभिलाषः शास्त्रधारणमित्यादयः । ब्रह्मचर्यं गृहीतं पुनर्गार्हस्थ्यं करोति पुनर्गार्हस्थ्यं किंचित्संसेव्य त्यागं करोत्यतएतदन्तरे यद्धर्मरहितत्वेन कालोजातस्तत्रधर्मो न्यूनएवजायते तथाह्युपदिशति ॥

भा०—छहों पदार्थ जिसमें पाए जाएं वह भगवान् कहलाता है। वे छः पदार्थ कौन से हैं सुनिये ? समग्र ऐश्वर्य १ धर्म २ यश ३ श्री ४ ज्ञान ५ और वैराग्य ६। इनमें से एक भी पदार्थ रुद्र विष्णु आदि भगवत् पद से पुकारे जाने वालों में नहीं हैं। पहले तो योग रूप जो समग्र ऐश्वर्य है वही नहीं है, क्योंकि ये सब काम के वश हैं और स्त्री के साथी हैं, जिनको लोग योगी कहते हैं उनके साथ स्त्री है यह हंसी की बात है। धर्म भी उनमें नहीं है क्योंकि जहां छल है वहां धर्म कहां ? विष्णु ने नारद को वानर मुख बना कर उसके साथ छल किया यह प्रसिद्ध है। अब आया यश वह भी नहीं, रावण के मारने से लोगों का कल्याण हुआ इससे

यश हुआ तो पर साथ में स्त्रीहरणजनित अपयश भी तो हुआ। जिस रावण को बाली नामक वानर ने तथा सहस्रार्जुन ने बांध लिया उस कायर रावण को मारने से कैसे यश हुआ। राम तो भगवान् तथा जगत् के कर्ता कहे जाते हैं, ऐसे महापुरुष की स्त्री का हरण होना तो और भी महा अपयश है। अब श्री को भी देखिये-जिसको परमार्थ में मुक्ति नहीं है और इस लोक में यश नहीं है उसके पास श्री कैसे कही जा सकती है। अब ज्ञान के विषय में दृष्टि डालिये-यदि ज्ञानस्वरूप थे हैं तो अज्ञान के कार्य संसार व्यवहार में क्यों फसे। अब रहा वैराग्य—यह तो इन कल्पित ईश्वरों में है ही नहीं। कैसे पुराणों में इनका लौकिक व्यवहार बताया गया है। यह अकथनीय है, दासी तथा वेश्याओं में आसक्त थे। इत्यादि क्या क्या लिखा जाय। इस हालत में वैराग्य कहां। अतः उपर्युक्त छहों पदार्थ नाथ ही में हैं। समग्रैश्वर्य योग है सो तो उनको स्वभाव से ही सिद्ध है। धर्म मुक्ति रूप है। उससे भिन्न जिसको स्मृत्यादि शास्त्र धर्म कहते हैं, सो इनके लिए अधर्म ही है यश भी उन्हीं का है जिनका मुक्त रूप है, बन्धन रूप का कैसे यश कहा जा सकता है। श्री भी उसी की है जिसका रूप मुक्त है उस बन्ध रूप की छवि कैसी जो लौकिक

सुख दुःख में डूबा हुआ है। और उन्हीं का ज्ञान वास्तविक ज्ञान है वैराग्य वास्तविक वैराग्य है। सबका आधार नाथ ही है, इसलिए महासिद्धों का तात्पर्य नाथ ही में है। कोई कहता है-क्या नाथ ही मुक्तरूप है ये ईश्वर मुक्त नहीं हैं। यह तो पहले ही कहा जा चुका है, जो ख्रीयुक्त हैं और संसार में फसे हैं ये कैसे मुक्त कहलायेंगे, इसीलिए आगे मोक्ष और बन्धन बताया जायगा। भगवत् शब्द का भी निर्णय भी किया जायगा हमारे मत में शक्ति सृष्टि करती है, शिव पालन करता है, काल संहार करता है और नाथ मुक्ति देता है ब्रह्मा विष्णु तो शिव शक्ति और काल इनके अवान्तर भेद से कर्तृत्वादि शक्ति वाले हैं, न कि अपनी सत्ता से, जब शिवादि संसार के प्रवर्तक बनते हैं तब बन्ध रूप ही हो जाते हैं। कैसे जैसे जीव भाव बन्ध कोटि में गिना जाता है वैसे ही ईश्वर भाव भी बन्धन श्रेणी [redacted] माना जाता है इसीलिये जीवात्मा और परमात्मा ये दो भेद हैं। परन्तु ये शुद्ध आत्मा नहीं है, वह शुद्ध आत्मा तो नाथ ही है। ये संसार रूप अज्ञान को बढ़ाते हैं। नाथ तो अज्ञान को हटाता है, नाथ रूप से सृष्टि करने में उपेक्षा है अर्थात् नाथ रूप से सृष्टि की रचना नहीं होती। आचार्यों का पाण्डित्य तो खण्ड खण्ड में है पूर्ण

मेव व्यापकम् । पुनः निर्गुणन्तु शक्तिरहित मेव तदाव्यापकधर्मएव तत्रकथं कथ्यते । एतद्रीत्या निर्गुणपे चब्रह्मेयद्वयमपि परात्परं ब्रह्म न भवति तस्मात् परम हंसाये षयापि अवधूता उत्तमाः कथम् ? परात्परपूर्णोनाथो लक्ष्य इति ॥

भा० टी०—द्वैतवादी लोग क्रिया को ब्रह्म कहते हैं । अद्वैत वादी तो ब्रह्म निष्क्रिय है ऐसा कहते हैं ये दोनों ही ठीक नहीं क्यों कि ब्रह्म सदासक्रिय और कूटस्थ नहीं है । कैसे जैसे हम लोगों में सदा क्रिया नहीं रहती और सदा अक्रिया भी नहीं होती, तुम और हम प्रातःकालादि के समय स्नान भोजनादि क्रिया करते हैं फिर मध्याह्नादि समय में स्वस्थ चित्त होकर सब क्रिया छोड़ कूटस्थ हो जाते हैं, फिर कार्य का समय आने पर क्रिया करने लगते हैं ऐसे ही ईश्वर भी क्रिया और अक्रिया ये दोनों ब्रह्म की शक्ति हैं । इन दोनों में रहता हुआ पूर्ण निरन्तर-निश्चल-अविनाशी-सर्वात्मक और परिपूर्ण कहलाता है । न कि एक तरफ से मान लेने पर 'अर्थात् सक्रिया या अक्रिया एक कोटि से परिपूर्ण पूर्ण नहीं कहा जाता । अवधूत गीता में कहा है—जो अपने अज्ञान से अखण्ड को खंडित

करता है इत्यादि। अखंडखड में भी वर्णित है—अखंड और खंड ये दोनों कैसे हो सकते हैं, अतः द्वैतवादियों के कैलास और वैकुण्ठादि स्थान हैं, अद्वैतवादियों के लिये माया शबल ब्रह्मस्थान है। योगियों के लिये बन्धन का मनन करने के बाद मुक्ति होने से निर्गुण स्थान है। बन्ध और मुक्ति दोनों से रहित जो परम सिद्धान्त है उस के अनुयायी अवधूत योगियों का जो स्थान है वह तो निर्गुण और सगुण दोनोंसे अतीत और अद्वैत के ऊपर वर्तमान है।

परम हंस लोग कहते हैं कि हमारा स्थान निर्गुण है यह उनका कथन मात्रहै न कि उनके व्यवहार से सिद्ध होता है कैसे? ये तो माया और गुण दोनों से रहित ब्रह्म में माया और गुणों की स्थापना करते हैं फिर नाना प्रकार से संसार की क्रिया आदिकों का उस में आरोप करते हैं और अनेक स्तोत्रों से उस की स्तुति करते हैं। तब कैसे वह निर्गुण और माया रहित हुआ। माहात्म्य वा प्रशंसा के लिये कहे जाने पर लक्ष्य रूप से निर्गुण ब्रह्म कहा गया न कि आचरण में देखा जाता है फिर कहने पर निर्गुण ब्रह्म भले ही इष्ट हो तब भी वह पूर्ण नहीं हो सका किन्तु एक देशी ही रहा। जैसे योगियों का इष्ट है उस रीति से नहीं हो सका। कैसे पहले ब्रह्म शब्द का अक्षरार्थ ही टूट गया ब्रह्म पद का अर्थ व्यापक है।

सो द्वैतवादी की रीति से एक देश से निर्गुण ब्रह्म सर्व व्यापक नहीं हो सका कैसे चैतन्य रूप जीव द्वारा यह व्यापक कहा जाता है तब तो पंच भूतों में व्यापकता नहीं रहीं आत्म रूप ही व्यापक रहा, निर्गुण तो शक्ति रहित ही है तब व्यापक धर्म कैसे कहा जाय इस रीति से निर्गुण ही ब्रह्म परात्पर उभय रूप ब्रह्म नहीं हुआ। इस लिये परमहंस की अपेक्षा भी अवधूत ही उत्तम हैं, कैसे उनका पर से भी पर पूर्ण नाथ ही लक्ष्य है।

मू०—अद्वैतोपरिवर्तिनिराकारसाकाराऽतीतनाथात् निराकारज्योतिर्नाथोजातस्ततः साकारनाथोजातः तदिच्छया सदा शिवोभैरवोजातस्ततश्चशक्तिर्भैरवी च जाता तस्माद्विष्णुर्जातस्तस्माद्ब्रह्माजातस्तेन सर्वसृष्टिरुत्पन्ना। नाथाद्द्विप्रकारासृष्टिर्जाता नादरूपा बिन्दुरूपा च नादरूपाशिष्यक्रमेणबिन्दुरूपा च पुत्रक्रमेण। नादात्मकनाथाजाता बिन्दुतः सदाशिवो भैरवोजातः। पुनः शब्दसृष्टि प्रकारमाह—एकासूक्ष्मरूपिणी द्वितीया स्थूलरूपिणी सूक्ष्मरूपिणी प्रणवो महागायत्री योगशास्त्रमिति। स्थूलरूपिणी ब्रह्मगायत्रीवेदत्रयीति। पुनर्योगशास्त्रतस्तंत्रशास्त्रं जातंवेदात् स्मृत्यादिशास्त्रंजातम् पुनः नवनाथानां पश्चाद्द्वादशसिद्धाश्चतु

रशीतिश्च द्वादशपन्थानोऽनन्तसिद्धाश्चजाताः । सदाशिव भैर-वाद्विष्णुर्ब्रह्मा सूर्यश्चन्द्र इन्द्रादिदेवताजाताः । पुनर्योगात् शेषयोगसांख्ययोगाद्योऽनेकयोगा अनेकभेदैर्जातास्तेन योगेनज्यौतिषन्यायादिकं शास्त्रं श्रुतितः स्मृतिशास्त्रव्याकरणपुराणोपपुराणानेकेतिहासाजाताः । एवं विग्रहसृष्टिनिवृत्तिप्रवृत्तिरूपिणीजाता। पुनः नादसृष्टिरपि सूक्ष्मस्थूलरूपिणीप्रकारद्वयात्मिकाजाता।

भा०—अद्वैत के ऊपर विराजमान निराकार और साकार इन दोनों से परे जो नाथ है उससे निराकार ज्योतिस्वरूप नाथ प्रकट हुआ फिर उससे साकार नाथ जी उत्पन्न हुए, उनकी इच्छा से सदा शिव भैरव हुए, उनसे भैरवी शक्ति, शक्ति से विष्णु विष्णु से ब्रह्मा ब्रह्मा से सारी सृष्टि हुई नाथ जी से दो प्रकार की सृष्टि हुई नाद रूप और बिन्दुरूप, नादरूप शिष्य क्रम से और बिन्दुरूप पुत्र क्रम से। नाद से मत्स्येन्द्रनाथ हुए, और बिन्दु से सदा शिव भैरव हुआ। अब आगे शब्द सृष्टि के क्रम को कहते हैं पहली सूक्ष्म रूप दूसरी स्थूल रूप। प्रणव महागायत्री और योगशास्त्र यह सूक्ष्म शब्द सृष्टि है। ब्रह्म गायत्री और तीन वेद यह स्थूल शब्द सृष्टि है। फिर योगशास्त्र से तंत्र शास्त्र हुआ, और वेद से

वामभागे। सव्ये विष्णुस्तथैव च। याऽद्भुता निजाइच्छा शक्तिस्तस्या अंशेन जातः। साकारः स विष्णुः संसारप्रवृत्त्यर्थं यस्य सव्यभागे। पुनः मध्यभागेस्वयंपूर्णो निर्गुणसगुणातीतसर्वशिरोमणिर्नाथस्तस्य यः साकाररूपो नाथो मध्यभागे स नाथो ज्योतिरूपोममहृदयान्धकारनिवर्तनं करोतु

भा०—यहां से आगे मंगलाचरण के श्लोकों का व्याख्यान किया जायगा, निर्गुण अर्थात् ब्रह्म सर्वोपरिवर्तिनाथ के वाम भाग में अर्थात् एक व्यवहार में है, यहां वाम भाग से क्या लिया जाता है सो कहते हैं—जैसे किसी के प्रति शास्त्र का कथन है कि कोई पुरुष ऊर्ध्वगति ब्रह्म पद को प्राप्त होगया। तब कहते हैं कि सर्व व्यापक एक रूप निर्गुण ब्रह्म का भी ऊपर और नीचे यह व्यवहार अवयव की कल्पना किए बिना नहीं हो सकता, अन्यथा किस देश में वा किस दिशा में और कहां से वाक्य रचना की जायगी क्योंकि निर्गुण में कोई देश दिशा आदि तो हैं ही नहीं इस लिए कल्पना के बिना कुछ व्यवहार नहीं हो सकता है, इसी रीति के अनुसार निर्गुण वाम भागे यह कहा गया है। उस साक्षात् स्वरूप के एक व्यवहार में निर्गुण, और दूसरे व्यवहार में अपनी अद्भुत इच्छा शक्ति है, वही शक्ति सगुण ब्रह्म का मूल कारण है।

मध्य भागे, इस का अर्थ सब का आधार है वा सर्व शिरोमणि यह नाथ है, वा जिसमें निर्गुण सगुण दोनों एक हो जाते हैं। सत्य असत्य जड चैतन्य सब भाव जिस में समता को प्राप्त कर लेते हैं, और जिस से द्वैताद्वैत का भाव दूर हो जाता है।

जो इस प्रकार सब से ऊपर रहने वाला वाक् मन से परे और वाङ् मनोमय द्वैत और अद्वैत दोनों से रहित, जैसा ही है वैसा ही है इस तरह सब से विलक्षण उसे कह सकते हैं वह परिपूर्ण रूप नाथ ही सिद्धों का लक्ष्य है वह मेरा कल्याण करे। मोक्ष मार्ग में दक्षिण भाग से वाम भाग श्रेष्ठ है इसी लिये वाम भाग में निर्गुण कहा है। जीव सगुण और द्वैत रूप हैं इस लिए बद्ध कहलाते हैं वे उस नाथ के नखों के अग्रभाग में रमण करते हैं और जो निर्गुण तत्त्वभूत अद्वैत रूप मुक्त हैं वे चरणों के अग्र भाग में रमण करते हैं अर्थात् बद्ध की अपेक्षा मुक्त का साक्षात् सम्बन्ध है। ये दोनों व्यवहार मात्रसे दिखाये गये हैं सो औपचारिकमात्र हैं वास्तवमें तो बन्ध और मुक्ति दोनों से रहित है। जो तत्त्व का अनुभव करने वाले मुक्त हैं वे तो नाथ जी के समस्त शरीर में रमण करते हैं, इस में संदेह ही क्या है, क्योंकि वे नाथ रूप ही हैं भिन्न रूप नहीं हैं। आगे कहा है कि वाम भागमें शम्भु स्थित हैं। इस का तात्पर्य यह है कि जो

निर्गुण ब्रह्म का अंश शिव है वह संसार के कल्याण के लिए साकाररूप से उत्पन्न होकर वामभाग में स्थित है विष्णु दक्षिण भाग में स्थित है इस का अभिप्राय यह है कि नाथ जी की जो अद्भुत स्वकीय इच्छा शक्ति है उसके अंश से उत्पन्न होने वाले संसार की प्रवृत्ति के लिए साकार विष्णु नाथ जी के दक्षिण भाग में हैं मध्य में स्वयं पूर्ण तथा निर्गुण सगुण से अतीत सर्व शिरोमणि नाथ हैं उनका जो साकार रूप नाथ है वह ज्योतिस्वरूप नाथ जी मेरे हृदय से अज्ञान रूप अन्धकार को दूर करें ।

मू०—विश्वोत्पत्तिंकरोति स्वस्यात्पुत्पत्तिंकथयति । एवं ब्रह्मणा इच्छयाद्वरूपोजातः, स नरइतितेनतपस्तप्तं, तेन शरीराज्जलानि नाराइतिमातास्तत्रतेनशयनं कृतंतेन नारायणइति संज्ञको जातः । पुनरस्यैवावान्तर रूपाणि रामकृष्णादीनि जातानि तेषामपि रामनवमी जन्माष्टमीत्यादि जन्मकर्मोत्सवाइति मन्यन्ते । तथाच उत्पत्तिमान् सनाशवान् पुनर्यत्रलोके गतास्ते पुनरायान्ति । कथम् ? जयविजयौशापादसुरौजातौ । तर्हितेषांस्थानं निर्भयंकथम् अथच—विश्वोत्पत्ति कारणमेवोक्तं तेनेवंज्ञायते । अन्यदेवापेक्षया संसाराऽपेक्षयाच सर्वोत्तम शिवएव परन्तुस्वस्मात्तुनिकृष्टएवेतिकृत्वा

मंगलंतुनाथात्मकमेव कृतम् । आदिनाथो गोरक्षन.थश्चांशांशि भावेन वास्तवमेक एव परन्तुव्यवहारार्थमङ्गांगिभावेन सेव्यसेवकभावेन नाथात्मकमेव मंगल कृतं तेनैवसूचितं सर्वस्मादुत्तमः शिवः शिवा-दुत्तमोनाथ इति योगे देवानामपच संसारे सर्वोत्तमोनाथ इति संकेत-रीत्या । नाथस्योत्पत्तिरेव योगशास्त्रेण न कथिता, यतोजन्मकर्मापि न गीयते अतएव सिद्धसिद्धान्त पद्धतौ—श्रीगोरक्षनाथेन विश्वस्य-कर्तृत्वं शिवस्य लिखितं न.थस्य तु न लिखितम् । कथं विश्वकरणे सगुणत्वमायाति सोपाधीश्वरत्वं चायाति, नाथस्तु निर्गुण एव निरुपाधिरूप एव तस्य प्राकृतिक कार्यकरणेन किं माहात्म्यं किं वा श्रीरिति । यदि पुनः शिव एव मुख्योदेवोभवेत्तर्हि मंगलं शिवात्मकं किमर्थं न कृतम्, एवं रीत्या कथनं महासिद्धानां सिद्धान्तोवर्तते नतु स्थूलरीत्या प्रवृत्तिरीत्या कथनरीतिः । कथमेते तु निर्गुणा ऐश्वर्यं बहुधागुप्तं कुर्वन्ति । अन्येतु ऐश्वर्यं प्रकटी कुर्वन्ति । अहो—विपरीता वार्ता तस्याः श्रवणेपि ज्ञानेऽपि चाऽप्रियं भवति । अस्मिन् मते श्रुतिर्न साधिका साधिका वेति वार्ता । श्रुतिश्चास्माकं मते साधिका न भवेत्, भवेदपि चेत्तर्हिमेरुः कल्प्यते

पृथिवी चलति । आकाशात् सर्वं जायते तत्तु पृथिव्या एव सर्वं जायते पितुः पुत्रो जायते स पितापि पुत्राज्जायते एवं सर्वमपि कार्यं विपरीत रीत्या भवेत्। यत एव न वक्तव्यं यन्महासिद्धानां तात्पर्यं तदेव श्रुतिर्वक्तुमिच्छतीत्यूर्ध्वबाहुर्ध्वनि निकीर्षति । परन्तु नाना कर्मनिरूपणात्तात्पर्यान्यथा वचनात्सूक्ष्मात् स्थूलरूपनिरूपणात् घातकिनी जाता, भाराक्रान्ता च जाता, तेनतात्पर्यं वक्तुं न शक्यते। यदि किंचित् वक्तु शक्यते यन्महासिद्धानां तात्पर्यमेववदेत् । या श्रुतिः प्रमाणानु सारिणी सात्वस्माकं मतानुसारिण्येव, या च प्रमाण विरोधिनी श्रुतिः धर्माज्ञान प्रतिपादिका साऽस्माकं मतानुगामिनीमा भवतुनाम किन्तु सूक्ष्मस्य निरूपणम् । प्रथमतउक्तं श्रुतिरस्माकं मतं साधिकान साधिके सिद्धमविरुद्धमित्यादिति । कथं तदाह् नसाधिकाभवेत् तदेवम् । अस्मात् तूभयोमध्ये नास्ति । कथम् ? यद्यन्तु महावेद योगमार्गमास्तेन च वयस्मात्पर्यर्णा कुर्म, परन्तु एषामते स्थूलवेदाः परम पदार्थो इति मन्यन्ते यदि च तदुक्तमादरान भवेयुस्तदाऽस्माकं मतं दूषणार्थंपर्ं कुर्वन्ति तदिदमेव यथात्मिनो मुनिः प्रतिपादयति– भोमुने महान् न नराम इति। एवं च वनेमुनिर्नानु मतामस्वं दूषणमेव,

परन्तुतस्यत्विष्टमेवेति कृत्वा मनसातु मुनिस्तुष्यत्येवपरन्तुतदभिप्रायेण-बाह्यवृत्त्यापि तुष्टएव भवेत्। कथम्? यदि संग क्रियते तदातुलद्यभ्रंशोऽतोऽज्ञतयाभूषणेऽपि दूषणमारोपयति। यतोहेतोर्न साधिकेत्युक्तंतद्वर्जनं चैतद्दूरीत्येति। पुनः साधकत्वेकोवादोषइति चेत्कथ्यते—साधकेति तु येकथयन्ति ते पुराणस्मृति किंकराः, वयन्तु स्थूलवेदानां पितृकारण महावेदस्तस्यानुसारिणोयोगसिद्धान्तिनस्ते कथं तदाश्रिता भवेमेतिरीत्या साधकत्वमपि वर्जितम्। पूर्वमप्युक्तमेव, वयन्तु महावेदयोगानुसारिणइति। अथ च श्रुतिर्यद् वदति तदस्माकं महासिद्धानां मतं तदेव वदति सकलाया अपिश्रुतेस्तात्पर्यं प्रणवयोगपरमेव। तथाच याश्रुतयः प्रणवानुसारिण्यस्तास्तु योगमेववदन्ति। ये च श्रुत्यनुकूलास्ते प्रथममेव प्रयुक्ता इति। पुनः, ब्रह्मवेदस्य एकोनविंशति रुपनिषदोमण्डूक माण्डूक्य क्षुरिकाकैवल्य प्रभृतयः। छान्दोग्य बृहदारण्य मैत्रायण्यादयोऽन्यवेदस्यापियोगपराएवैतास्तुसर्वाःप्रत्यक्षतः। पुनः, वेदवेदान्तादिसर्वपरोक्षवादो यतोहेतोस्तात्पर्येतात्पर्यं रचति प्रत्यक्षतः कथं तद्यतन्मर्यादानास्ति, यतोहेतो कर्मोपासनां ज्ञानंच वर्णयति परन्तु कर्मतः सर्वस्य तात्पर्यंयोग एवेति।

भा०—हिरण्यगर्भ ब्रह्मा संसार की उत्पत्ति करता हुआ अपनी भी उत्पत्ति सिद्ध कर रहा है। पहले ब्रह्मा की इच्छा से पुरुष उत्पन्न हुआ यह नर है, उसने तप किया, उस तप से उस के शरीर में जल उत्पन्न हुआ, उन जलों का नाम नार हुआ क्योंकि नर से उत्पन्न होने वाले को नार कहा जाता है। उन जलों पर उस नर ने शयन किया इसमे उस विष्णु का नाम नारायण यह प्रसिद्ध हुआ, फिर इसी के भावान्तर रूप राम कृष्णादि अवतार हुए उन्हीं की यादगार में रामनवमी जन्माष्टमी आदि उत्सव मनाए जाते हैं। जो जो उत्पत्ति वाले हैं, उनका नाश भी होता है और जो नश्वर लोकों में गये हैं या जाते हैं वे वहां से लौटते भी अवश्य हैं। कैसे? सुनो—वैकुंठ में जय और विजय नाम के दो द्वारपाल थे वे शाप से असुर हो गए थे, तब उनके स्थान को निर्भय कैसे कहा जा सकता है इससे सिद्ध होता है कि जो संसार की उत्पत्ति का कारण हैं वे भी उत्पत्ति नाश वाले हैं और देवताओं की तथा संसार की अपेक्षा सर्वोत्तम शिव ही है, परन्तु नाथ रूप की अपेक्षा तो निकृष्ट ही हैं इसी लिये नाथ जी का स्मरण रूप मंगल किया गया है श्री आदिनाथ जी और श्रीगोरक्षनाथ जी इन दोनों में अंशांशि भाव का सम्बन्ध होने से अथवा स्वयं एक होने पर

भी व्यवहार के लिये अर्द्धांगिभाव को प्राप्त होने से नमस्कार्य नमस्कारक भाव मान लिया गया है, इसी लिये ग्रन्थ के आदि में श्रीनाथ जी का प्रणामरूप से मंगल किया गया है उसी से सूचित होता है कि सब से उत्तम शिव है, और शिव से उत्तम नाथ है, अतः योग देव और संसार सब से श्रेष्ठ नाथ है। नाथ जी की उत्पत्ति योगशास्त्र में वर्णित नहीं है। इस से सिद्ध हुआ कि नाथ जी का जन्म और कर्म नहीं है। सिद्धसिद्धान्त पद्धति में श्रीगोरक्षनाथ जी ने संसार का कर्ता शिव जी को लिखा है, न कि नाथ जी को, क्योंकि संसार-रचना में सगुणता और सोपाधिक ईश्वरपना आता है, नाथ तो निर्गुण और निरुपाधिक हैं संसार सम्बन्धि कार्य करने से उनका क्या माहात्म्य होगा और क्या विभूति बढ़ेगी। यदि शिव ही मुख्य देव होते तो शिव का ही मंगल क्यों न किया गया, सूक्ष्म आशय से कथन करना महासिद्धों का सिद्धान्त है, स्थूल और प्रवृत्ति रीति से कथन की शैली नहीं है कैसे? महसिद्ध लोग अपनी बड़ाई नहीं चाहते इस लिये अपनी सिद्धि को गुप्त रखते हैं। और अन्य लोग अपने माहात्म्य के लिये ऐश्वर्य दिखाते हैं, देखो कैसी उलटी बात है जिसको सुनकर और जानकर

अप्रिय सा प्रतीत होता है । इस सिद्धमत में श्रुति साधक है भी और नहीं भी ये दोनों हो बातें हैं सूक्ष्मनाथ तत्व के कथन करने में श्रुति की सामर्थ्य न होने से वह हमारे मत में साधक नहीं है, अगर श्रुति असाध्य साधन करे तो मेरु पर्वत भी कांपने लगे और पृथिवी हिलने लगे । ब्रह्म से ही सब उत्पन्न होते हैं यह न हो कर पृथिवी से हो जायगा । पिता से पुत्र उत्पन्न होता है किन्तु पुत्र से भी पिता होने लगेगा इस प्रकार सब काम उलटे हो जायेंगे, ऐसा कहने पर भी कोई दोष नहीं इस लिये ऐसा नहीं कहना चाहिये क्योंकि जो महासिद्धों का तात्पर्य है श्रुति उसी का कथन हाथ उठा कर करना चाहती है, परन्तु श्रुति नाना कर्मों का निरूपण करने से लक्ष्य रूप के विपरीत जा रही है, और स्थूल कर्म के निरूपण से नाथ मार्गानुकूल नहीं है, तथा मुमुक्षु पुरुष के लिये भारभूत है, नाथ तत्व के निरूपण में श्रुति असमर्थ हो जिस परमार्थ तत्व का निरूपण श्रुति करती है वह महासिद्धों का तात्पर्य ही है। जो प्रणव (ओंकार) का अनुसरण करने वाली श्रुति है वह मेरे ही मत का अनुगमन कर रही है, और जो प्रणव के विरुद्ध होकर धर्म और ज्ञान को बताने वाली है वह हमारे मतानु यायी न हो किन्तु सूक्ष्म तत्व निरूपण करने वाली श्रुति तो

हमारे अनुकूल ही है, पहले कह चुके हैं कि हमारे मत में श्रुति साधक है और नहीं भी, यह दोनों ही बातें हैं कैसे इसका उत्तर यह है कि श्रुति साधक नहीं कहलाती हमें उस श्रुति से कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि हम महावेद रूप योग के आश्रित हैं अतः अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रखते। जो स्थूल वेद को ही परम पदार्थ मानते हैं उनके स्थूल वेद यदि हमारे मत के साधक न हों, इस पर जो लोग हमारे ऊपर दोषारोपण करते हैं यह तो हमें इष्ट ही हैं, जैसे कोई स्त्री निष्काम मुनि को कहती है कि हे मुनि जी आप सकाम हैं, ऐसा यद्यपि मुनि के लिये दोष है परन्तु उस स्त्री को तो इष्ट है। ऐसा मान कर यह मुनि भीतर से तो प्रसन्न ही होता है परन्तु बाहर से असन्तुष्ट प्रतीत होता है, कैसे। जब वह स्त्री का संग करता है तब तो उसको सकामत्व कहना उचित है, परन्तु बिना संग के ही सकामत्व कहना भूषण में दोषारोपण करना है। इसी कारण से कहा है कि श्रुति साधक नहीं है। और साधक मानने में क्या दोष है उसको भी कहते हैं—जो कोई श्रुति को साधक कहते हैं वे श्रुतिस्मृति और पुराणों के दास हैं, हम लोग जो स्थूल वेदों का कारण पितारूप महावेद ओंकार है उसके अनुयायी हैं, इसलिये योग सिद्धान्तवादी ओंकार के

अप्रिय सा प्रतीत होता है । इस सिद्धमत में श्रुति साधक है भी और नहीं भी ये दोनों ही बातें हैं सूक्ष्मनाथ तत्व के कथन करने में श्रुति की सामर्थ्य न होने से यह हमारे मत में साधक नहीं है, अगर श्रुति असाध्य साधन करे तो मेरु पर्वत भी काँपने लगे और पृथिवी हिलने लगे । ब्रह्म से ही सब उत्पन्न होते हैं यह न हो कर पृथिवी से हो जायगा । पिता से पुत्र उत्पन्न होता है किन्तु पुत्र से भी पिता होने लगेगा इस प्रकार सब काम उलटे हो जायेंगे, ऐसा कहने पर भी कोई दोष नहीं इस लिये ऐसा नही कहना चाहिये क्योंकि जो महासिद्धों का तात्पर्य है श्रुति उसी का कथन हाथ उठा कर करना चाहती है, परन्तु श्रुति नाना कर्मों का निरूपण करने से लक्ष्य रूप के विपरीत जा रही है, और स्थूल कर्म के निरूपण से नाथ मार्गानुकूल नहीं है, तथा मुमुक्षु पुरुष के लिये भारभूत है, नाथ तत्व के निरूपण में श्रुति असमर्थ हो जिस परमार्थ तत्व का निरूपण श्रुति करती है वह महासिद्धों का तात्पर्य ही है। जो प्रणव (ओंकार) का अनुसरण करने वाली श्रुति है वह मेरे ही मत का अनुगमन कर रही है, और जो प्रणव के विरुद्ध होकर कर्म और ज्ञान को बताने वाली है वह हमारे मतानुयायी न हो किन्तु सूक्ष्म तत्व निरूपण करने वाली श्रुति तो

हमारे अनुकूल ही है, पहले कह चुके हैं कि हमारे मत में श्रुति साधक है और नहीं भी, यह दोनों ही बातें हैं कैसे इसका उत्तर यह है कि श्रुति साधक नहीं कहलाती हमें उस श्रुति से कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि हम महावेद रूप योग के आश्रित हैं अतः अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रखते। जो स्थूल वेद को ही परम पदार्थ मानते हैं उनके स्थूल वेद यदि हमारे मत के साधक न हों, इस पर जो लोग हमारे ऊपर दोषारोपण करते हैं वह तो हमें इष्ट ही हैं, जैसे कोई स्त्री निष्काम मुनि को कहती है कि हे मुनि जी आप सकाम हैं, ऐसा यद्यपि मुनि के लिये दोष है परन्तु उस स्त्री को तो इष्ट है। ऐसा मान कर वह मुनि भीतर से तो प्रसन्न ही होता है परन्तु बाहर से असन्तुष्ट प्रतीत होता है, कैसे। जब वह स्त्री का संग करता है तब तो उसको सकामत्व कहना उचित है, परन्तु बिना संग के ही सकामत्व कहना भूषण व दोषारोपण करता है। इसी कारण से कहा है कि श्रुति साधक नहीं है। और साधक मानने में क्या दोष है उसको भी कहते हैं—जो कोई श्रुति को साधक कहते हैं वे श्रुतिस्मृति और पुराणों के दास हैं, हम लोग जो स्थूल वेदों का कारण पितारूप महावेद ओंकार है उसके अनुयायी हैं, इसलिये योग सिद्धान्तवादी ओंकार के

पुत्ररूप स्थूल वेद के आश्रित कैसे हो सकते हैं। इस रीति से श्रुति साधक नहीं मानी गई है। यह पहले कहा जा चुका है कि हम लोग महावेद रूप योग के आश्रित हैं। व सत्य में पूछा जाय तो जिस बात को श्रुति कहती है उसी को हमारा मन भी कह रहा है कि समस्त श्रुतियों का तात्पर्य प्रणव योग में ही है उसी प्रकार जो श्रुतियां प्रणवानुसारी हैं वे तो योग का ही कथन करती हैं, और जो कर्म प्रतिपादक स्थूल वेद के अनुयायी हैं उनका खण्डन तो पहले ही हो चुका महाबोधक वेद के मुण्डक माण्डूक्य क्षुरिका और कैवल्य आदि उन्नीस उपनिषद् और अन्य वेद के छान्दोग्य बृहदारण्य मैत्रायणी आदि उपनिषद् ये पूर्वोक्त सारे ही प्रत्यक्ष रूप से योग का ही निरूपण करते हैं, अन्य कर्मों को बताने वाले वेद वेदान्त आदि परोक्षरूप से अर्थात् परम्परा रूप से योग के प्रतिपादक हैं वेदों में यह मर्यादा नहीं है कि योग का ही निरूपण करते हैं, अपितु कर्म उपासना और ज्ञान सबका ही निरूपण करते हैं परन्तु सबका तात्पर्य तो योग में ही है।

मू०—केश्चित् कथ्यते—ब्रह्मा विश्वं सृजति विष्णुः पालयति रुद्रः संहरति, तस्यनुक्रमोनास्ति। योगस्यत्वनुक्रमो योपवर्तते सप्रथममुक्तएव। यदि चैतेषामेवानुक्रमोरक्षितव्यस्तदापयमपि

चानुक्रमोऽव्यतिक्रमएवयदाभवेत् तदा कंवानुक्रमं करिष्यामि। कथम् ?—

अन्नं ब्रह्मारसो विष्णुर्भोक्ता देवोमहेश्वर,

इत्यादौ। तेषां मध्येभोक्तातुरुद्रएवोक्त स एवबलिष्ट एतौतुभोज्यमिति। तथैव रुद्रः संहरतीत्यत्र महाप्राबल्येन नैर्गुण्येन नित्यमुक्तस्वरूपेण च तद्दोषधारकोनभवति तदन्यौतु गुणपर्यव-सानौ गुणावधीयत एतत्कार्यकरणं तद्बाधकमेव भवतीति पुनरस्य विचारस्य वार्ता बद्धास्तास्त्वग्रे वक्ष्यन्तइति।

भा०—कोई कहता है कि ब्रह्मा संसार को पैदा करता है विष्णु उसकी रक्षा करता है और रुद्र संहार करता है, परन्तु वह अनुक्रम नहीं है। योग का जो अनुक्रम है वह पहले कहा जा चुका है, यदि लोक प्रसिद्ध अनुक्रम की ही रक्षा की जाय तो यह अनुक्रम उल्टा हो जायगा तब किस अनुक्रम का आश्रय किया जायगा, अतः योग का ही अनुक्रम ठीक है, कैसे? अन्न ब्रह्मा और रस विष्णु है, इन का भोक्ता महेश्वर है, इन सब में भोक्ता तो रुद्र ही कहा गया है वही बलिष्ठ है विष्णु और ब्रह्मा तो भोज्य हैं, रुद्र संहार करता है यदि इस पर कोई दोष की शंका करे तो वह ठीक नहीं है। क्योंकि वह

प्रबल निर्गुण और नित्यमुक्तस्वरूप है इसलिये उस दोषका आधार यह नहीं हो सकता, ब्रह्मा और विष्णु ये दोनों तो गुणों के अन्तर्गत हैं अतः गुणों के आधार हैं, इसलिये शरीर इन्द्रियादि उन में बाधक हैं यह बात इस समयस्थगित की जाती है आगे इसका विस्तार से व्याख्यान होगा।

मू०—सर्वे सम्प्रदायाः कथयन्ति— सहस्रशोग्रन्थाजाता इति तान्प्रतिमयाकथ्यते— यदि भमोपदेशो भन्यतांतर्हि सर्वे ग्रन्थाः कूपे निपात्यन्ताम्। कथमाधुनिकसमये स्वयमपि मुक्ताम भवन्तितेऽन्येषांमोक्षोपदेशेकथं समर्था भवेयुर्यत आश्चर्यार्थ मभिमानार्थं च जीविकार्थं व्यसनार्थं च यस्यकस्याप्यभिलापार्थ यत्शास्त्रंकरोति तद्धर्मार्थिपुरुषाणाममे कथं शोभनीयं भवेत्। तदुक्तं श्रीगोरक्षनाथेन।

> शिलयाकिं परं पारं शिलासङ्घः प्रतार्य्यते।
> स्वयन्तीर्णोभवेद्यस्तु परांस्तारयत्यलम्॥

अतः कारणादाधुनिका अमुक्तपुरुषास्तैः कृतानि सहस्रशः शास्त्राणि त्यानित्याज्यानि। एतच्छास्त्रस्याभिमानो भवद्भिर्न रक्षणीयइति।

भा०—सब संप्रदाय वाले कहते हैं कि हजारों ग्रन्थ बन चुके हैं उन सब के प्रति मेरा कथन है कि यदि मेरा उपदेश मानो तो मैं कहूंगा कि सारे ग्रन्थों को कूप में फैंक दो क्यों? इस आधुनिक समय [redacted] स्वयं भी मुक्त नहीं होते हैं तो दूसरों के लिये मोक्ष का उपदेश देने में कैसे समर्थ हो सकेंगे, क्योंकि लोगों को चकित करने के लिये अभिमान जीविका और व्यसन आदि किसी प्रकार की अभिलाषा के लिये जिस शास्त्र की रचना की जाती है वह शास्त्र धर्मार्थी पुरुषों के सामने किस प्रकार प्रशंसनीय हो सकता है, इसी आशय को लेकर श्रीगोरक्षनाथ जी ने कहा है— कि जो स्वयं पत्थर की तरह अज्ञानी है वह कैसे दूसरे को तारेगा! अतः आधुनिक अमुक्त पुरुषों के बनाये हुए हजारों शास्त्र हैं वे सब त्याज्य हैं, अन्यथा मायावियों के जाल से वास्तविक शास्त्र के गौरव की रक्षा नहीं कर सकोगे।

मू०—शंकरसम्प्रदाये विद्यारण्यस्त्यागीजातः पश्चाद् वेद भाष्यंकृतंतदनन्तरं काशींगत्वा कस्यापि पंडितस्याग्रे स्वकृतभाष्यवार्ताकृता। तदा तेन सनिन्दितः। कथं त्यागी भूत्वापुनरपिव्यवहार उद्युक्तः? तदापुनः परमहंसेनोक्तम्

मदीयः श्रमस्त्ववलोकनीयइति। तदा पंडितेन दृष्ट्वा अशुद्धि बाहुल्यमित्युक्तं तदा परमहंसो विरागो जातः। पुनः कदा चिद् वन भ्रमणेकस्यचित् प्रेतस्य कृपया संमेलनं जातम्। तेन भाष्यं कमण्डलौ धृत्वाऽशुद्धिर्दूरीकृतेतिवार्ताबहुप्रसिद्धा। पुनः कौमुदीकारो भट्टोजीदीक्षितः सोऽपि प्रेतत्वं गतः। पुनः वैष्णव संप्रदाये ताताचार्येणाप्ययदीक्षितस्योपारिकोप्यभि चारः संचारितः स तु तेन शिवभक्तेन शिवस्मरणे कृते तस्यैव मरणाय जातः।

एवं यदा तदा मया कथ्यते यादृशानि प्रेत रूपैः प्रेत प्रसादाभिलाषिभिः पुरुषैः कृतानिशास्त्राणिमोक्षायकथंभवन्त्यतःकारणात् महासिद्धानांमते विद्याभ्यासेनकोऽपिग्रन्थंन करोति किन्तु योगाभ्यासेनासिद्धोभूत्वा सिद्धत्वेन शास्त्रं करोति। स स्वयमपि मुक्तोऽन्येषामपि मुक्तिं ददातीति सिद्धान्तः। ग्रन्थस्य प्रकरणबन्धनादिरतोऽपिचनक्रियते कथमिषमप्याशैव भवति निषम्यश्च भवति ज्ञानन्तु क्षण- स्यापिनास्ति। तर्हिएतावत्संकल्पः क्रियते। तस्यापि अहंकार

विलासितत्वात्तद्रूपमपिकर्मैवलग्नं भवेत् पुनः क्षणेनमरणे सत्यन्यत् कार्यम्। तावन्मात्रस्तु बन्धो जात एव यस्माद्यत आरम्भः कृतः सएवादिमान् न कृतः तत्रैवसमाप्तिः। स्वतंत्रा णां पुरुषाणां क्षणमात्रमपि बन्धनं प्रियं नभवेत्। पुनः संस्कृतो वर्तते सोप्यघटित पदार्थस्तुनास्ति सर्वव्यापकोऽपि नास्ति, कथम्?

स्वभावकर्मापिनास्ति यदाशिष्यते तदाऽऽयाति। पुनर्यश्चशब्दः सोऽघटितोऽस्ति विनापि शिक्षां यत आयाति समन्दव्यापकोनास्ति यत्परात्परमघटितस्वरूपं तथैवतदंश एष शब्द एवाघटितो दृश्यते स एवग्राह्यइति। अतः कारणा-देवश्रीनाथेन शब्दमयीगिरेतिकृत्वा सर्वाभिरपि गिराभिः सर्वाणि शास्त्राणि कृतानि। साचसंस्कृतप्राकृतनागरमा-गधीभाषाभिरथच यवनभाषापर्यन्ताभिरपि यत एतेनव्यव-हारे तु सर्वज्ञत्वं सूचितं सिद्धान्ते शब्दएवमुख्यइति। योऽ-घटितपदार्थो विशेषव्यापकः सएव नतुसंस्कृतोवाऽन्योऽपि यः कश्चित् एकसांकेतिक भाषाशब्दः सएवसिद्धान्त इति।

नकिन्तुशब्दएव सिद्धान्तइति शब्देब्रह्मणि शुद्धत्वाऽशुद्धत्वेनस्वाऽव्यक्त लिङ्गोपर्येव तात्पर्यमिति यतस्तत् प्रकारेण सर्वमेकम् । यदादेवः चिन्तनीयस्तदा तेषांशास्त्रपठनेऽपि किम् ? तदुक्तं भर्तृहरिणा—

तार्किका घटपटेतिरटेयुः शाब्दिकाः खफछठेति पठेयुः ।
मादृशान्तुसततं स्मरणीयौ, चन्द्रचूडचरणौ रमणीयौ ॥

पुनरवधूतेषुकिंचिद् दोषारोपणं क्रियते निश्चितं तथा कुर्वन्तुनाम ततोऽवधूतानां नमनोविकारः । तदुक्तं भर्तृहरिणाश्रीगोरक्षनाथशिष्येण—

चाण्डालः किमयंद्विजातिरथवा शूद्रोऽथवा तापसः ।
किंवातत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोपि किम् ?
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः संभाष्यमाणा जनैः ।
नोक्रुद्धाः पथिनैव तुष्टमनसो गच्छन्ति ते योगिनः ॥
गालिप्रदानेऽपि नावधूतानां क्रोधादिरिति ।

भर्तृहरिणोक्तमेव—

ददतु ददतु गालिंगालिमन्तोभवन्तः ।

वयमपितदभावाद् गालिदानेऽप्यशक्ताः ॥
जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानम् ।
नहि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति ॥

पुनः क्रोधो न क्रियते इदमपि नास्ति कथम् ? अक्रोधस्तुपरमहंसानां धर्म पुनः क्रोधकरणमिति गृहस्थानां धर्मः। अस्माकं तुद्वयमपि धर्मएवेत्यत एवैकदा भर्तृहरि स्वेच्छयासिद्धस्वरूपः कापोतीमाश्रित्यपण्यवीथिकायां कणानादाय चर्वयन् नृपतिना विक्रमार्केण दृष्ट । स ज्येष्ठोभ्रातैव तथापि सिद्धरूपस्तेनाज्ञातो यतउक्तम्— अहोअस्यापि जननी यये तादृशः पुरुषोजनितो यश्च स्वोदरभरणेप्यसमर्थ इति । तच्छ्रुत्वा किमुक्तं सिद्धेन ? अहो तस्यापि जननी धिग् यः समर्थोपि परोपकारकरणेऽसमर्थ इति । यदाचैवं विवेकवचनं श्रुत्वाराजा महान् विचक्षणः स्वकीयं ज्येष्ठभ्रातरं परम पुरुषं ज्ञात्वाऽश्वतः शीघ्रमेवावतीर्य तच्चरणेपतितस्तदाश्रीभर्तृहरिणोपदेशो दत्तस्तदनन्तरं परोपकार करणेऽसमर्थो-नृपतिः प्रवृत्तस्तेनच महाप्रतापवान् जातस्ततः कथ्यते—

महासिद्धा अकामिनोऽक्रोधिनो जिताहंकारास्ते वचन सहनं कथंनकुर्वन्ति परन्तुपरमहंसरीत्येमेतु परमहंसा नसन्ति गृहस्थाऽपिनसन्ति यथा काकोलूकमिति । तयोरेकस्तु दिनएव पश्यति, तदन्यो रात्रावेवपश्यति । इमेतु योगिनो यौगिकपरमहंसा मरालादृष्टिद्वयेनापि पश्यन्तो मुक्तिमुक्ताफलं गृह्णन्ति । शिवशक्त्योर्द्वयमपि चैकीकृत्य चरन्ति· तेऽवधूतयोगिनो भवन्तीति सिद्धान्तेन सर्वदारमन्ते ॥ इति शिवम् ।

भा०—शंकराचार्य के सम्प्रदाय में विद्यारण्य स्वामी त्यागी हुए, फिर उन्होंने वेद का भाष्य बनाया उसके बाद काशी जाकर किसी पंडित के आगे उस वेद भाष्य की चर्चा की, उस पंडित ने उनकी निन्दा की और कहा कि त्यागी होकर व्यवहार में क्यों फसगये, तब परम हंस ने कहा मेरा परिश्रम तो देखो अर्थात् मेरे बनाये वेद भाष्य का अवलोकन तो कीजिये फिर पंडित ने उसे देखा और बहुत अशुद्ध बताया तब परम हंस विरक्त होगया। फिर कभी वनमें घूमते हुए उसकी किसी प्रेत से भेंट होगई उस प्रेत ने उस भाष्य को कमण्डलु में रख

कर उस की अशुद्धिया दूर करदी। यह बात बहुत प्रसिद्ध है। व्याकरण कौमुदी के कर्ता भट्टोजिदीक्षित भी प्रेत होगये थे। फिर वैष्णव संप्रदाय के ताताचार्य ने अप्पयदी, क्षित के ऊपर मारणोच्चाटनादिकर्म किया, तब शिव भक्त अप्पयदीक्षित ने शिव का स्मरण किया और शिवजी की कृपा से ताताचार्य की ही मृत्यु हुई। जब इस प्रकार की बातें हैं तो मैं कहता हूं कि प्रेत के प्रसाद के इच्छुक प्रेत स्वरूप पुरुषों के बनाए हुए शास्त्र कैसे मुक्ति दायक हो सकते हैं। इसकारण महासिद्धों के मतभेद में विद्याभ्यास के द्वारा कोई भी किसी ग्रन्थ को नहीं बनाता, हां योगाभ्यास से सिद्ध होकर सिद्धि के बल से सिद्ध पुरुष शास्त्र बनाता है, वह स्वयं भी मुक्त है और अन्यों को भी मुक्ति देता है, यह सिद्धान्त है, योगियों के बनाए ग्रन्थ प्रकरण आदि के बन्धन से मुक्त होते हैं, क्योंकि नियम के अन्दर रहना और आशा करना यह नाथ के स्वरूप से बहिर्भूत है, एक क्षण का भी पता नहीं कि क्या होगा इतना बड़ा संकल्प करना कि अब से प्रारम्भ कर के इतने दिनों के भीतर पूरा करेंगे। उस सबको अहंकार का खेल होने से यह भी कर्म ही का रूप है। फिर क्षण भर में मृत्यु होजाने पर यह सब काम उलट

जाता है। अर्थात् कुछ का कुछ हो जाता है उतना भी तो ग्रन्थ हुआ ही, इसी तरह जहां से जो आरम्भ किया गया उसका वही आदि हुआ और आगे जहां करना बन्ध हुआ वहीं समाप्ति होगई। किसी प्रकरण बंधनादि की आवश्यकता नहीं रखनी चाहिये क्यों कि स्वतन्त्र पुरुष को क्षण मात्र भी बन्धन अच्छा नहीं लगता है। संस्कृत यद्यपि पद पदार्थ से परिपूर्ण है। तथापि सब लोगों में व्यापक नहीं है इसी लिये यह जन्म सिद्ध भाषा नहीं है अपितु गुरु से सीखी जाती है। तब संस्कृत शब्दों का ज्ञान होता है। जो शब्द संस्कृत से भिन्न हैं अर्थात् व्याकरण के नियंत्रण से बाहर हैं, वे बिना शिक्षा के ही आजाते हैं अर्थात् मातृ भाषा होने से अनायास ही बोले जा सकते हैं। और यह असंस्कृत शब्द अव्यापक नहीं है अर्थात् सर्वत्र जनता में उसका व्यवहार है जो सब से बड़ा संस्कृत शब्द है उसका भी सरूप व्यापक नहीं है। वैसे ही उसका अंश भाषा शब्द भी अव्यापक देखा जाता है इस लिये सब भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। इसी कारण श्री नाथ जी ने शब्दमय वाणी मान कर सब भाषाओं में शास्त्र बनाए, यह रचना संस्कृत प्राकृत नागर और मागध भाषाओं में की गई है, यहां तक कहें उन्होंने तो यवन भाषा में भी शास्त्ररचना की है इस से नाथ जी की व्यावहारिक सर्वज्ञता स्पष्ट प्रतीत होती है

सिद्धान्त में तो शब्द ही मुख्य है। जो अपूर्ण और विशेषव्यापक है वह संस्कृत हो या एक देश की सांकेतिक भाषा हो ऐसा कोई नियम सिद्धान्त नहीं किन्तु शब्द ही ब्रह्म रूप है यह सिद्धान्त है क्यों कि शब्द रूप ब्रह्म में शुद्धाशुद्ध कुछ नहीं है अव्यक्त नाथ तत्व में तात्पर्य है और वह तो सब प्रकार से एक है। जब इष्ट देव की ही चिन्ता करनी है तो शास्त्र पढ़ने से क्या प्रयोजन है। यही श्री भर्तृ हरि ने कहा है-नैयायिक लोग घट पट शब्दों को रटते रहते हैं वैयाकरण ख फ छ ठ थ पढ़ते हैं परन्तु हमारे जैसे विरक्तों को तो सदा श्री शिवजी के सुन्दर चरणा विन्दों का ही स्मरण करना चाहिये। कुछ वादि लोग अवधूतों पर दोषारोपण करते हैं, सो बेशक करें उनसे अवधूतों के मन में कुछ खेद नहीं होता। श्री भर्तृ हरि ने भी कहा है जिस समय योगी लोग अपने मार्ग मे चलते हैं उस समय उनको देख कर अन्य लोग नाना प्रकार के तर्क उठाते है कोई कहता है यह चाण्डाल है और कहते हैं कि यह तो ब्राह्मण है। बहुतसे कहते हैं कि यह शूद्र है या तपस्वी है अथवा तत्व ज्ञानी योगी है परन्तुऐसे कथनों से योगी न तो क्रुद्ध होता है न खुश ही होता है। गाली देने पर भी अवधूतों को क्रोध आदि नहीं होता यह भी नाथ जी के शिष्य भर्तृहरि ने ही कहा है—

आप लोग बेशक गाली दें क्यों कि आप गाली वाले हैं, हमतो आप को गाली नहीं दे सकते क्यों कि हमारे पास गाली है ही नहीं संसार में यह बात प्रसिद्ध है कि जिस के पास जो चीज होती है वह उसी का दान करता है अन्य वस्तु का नहीं जैसे कैसा भी दाता क्यों न हो वह खरगोश के सींग का दान नहीं कर सकता इसका तात्पर्य यह है कि जो दोष वाला है वही दूसरों पर दोषारोपण करता है। अतः तुम सदोष हो और हम निर्दोष। क्रोध नहीं करना चाहिये हमारे मत में यह भी निश्चित नहीं है क्यों? क्रोध न करना यह परम हंसों का धर्म है और क्रोध करना यह गृहस्थियों का धर्म है हमारे तो दोनों ही धर्म हैं। एक समय सिद्ध भर्तृहरि जी अपनी इच्छा से कपोत वृत्ति को धारण कर के बाजार की गलियों में अन्न के दाने चुन २ कर चबा रहे थे। तब राजा विक्रमादित्य ने उन को देखा यद्यपि भर्तृहरि जी उनका ज्येष्ठ भाई था तो भी उस सिद्ध रूप में वे उसको न पहचान सके और कहा अहो इसकी भी माता है जिसने ऐसे पुरुष को पैदा किया है जो अपनी उदर पूर्ति करने में भी समर्थ नहीं यह सुन कर सिद्ध ने कहा कि बड़ा आश्चर्य है। जो पुरुष समर्थ होता हुआ भी परोपकार नहीं करता उसकी माता को धिक्कार है। बुद्धिमान् विक्रमादित्य

सिद्ध के ऐसे विवेक पूर्ण वचन सुन कर, यह मेरा ही जेष्ठ भाई परम पूज्य है ऐसा जान और शीघ्र घोड़े से उतर उनके चरणों में गिर पड़ा। तब श्री भर्तृ जी ने उसको उपदेश दिया उस के बाद विक्रमादित्य ऐसा परोपकारी हुआ कि उसका प्रताप सर्वत्र फैल गया इसी से कहते हैं कि महासिद्ध काम क्रोध और अहंकार इनको जीत लेते हैं अतः वे दूसरों के वचन को सहन कैसे नहीं करेंगे। परन्तु यह नियम परमहंसों की रीति के अनुसार है, सिद्ध तो न परम हंस है और न गृहस्थ, जैसे कौआ और उल्लू इन दोनों में एक दिन में ही देखता है दूसरा रात में। परन्तु ये योगी तो यौगिक परमहंस हैं दोनों दृष्टियों अर्थात् ज्ञान और योग से देखते हुए मुक्तिरूप मोती का ग्रहण करते हैं। जो शिव और शक्ति दोनों को एक करके उपासना करते हैं वे अवधूत योगी होते हैं वे सदा इसी सिद्धान्त में रमण करते हैं।

इति योगाश्रम श्री पूर्णनाथ संस्कृत कौलेज प्रधानाध्यापक मिथिलान्तर्गतघसस्तपुरवास्तव्य श्रीपं० द्रव्येशझाकृतभाषा टीका समाप्ता।

इति शिवम्

समाप्तोऽयंग्रन्थः

सूचना

यदि कोई महानुभाव स्वकीय ग्रन्थ में नाथ सम्प्रदाय के विषय में किसी प्रकार का भी लेख उल्लेखन करना चाहते हों तो "योगाश्रम महाविद्यालय मायापुर हरिद्वार के मैनेजर अथवा अखिल भारतवर्षीय अवधूत योगिमहासभा के प्रधान मन्त्री दक्षीणा बारह पंथ हरिद्वार से पूछ कर लिखना उनका प्रधान कर्त्तव्य होगा।